चिकित्सा विज्ञान

घाव

डॉ. कौशल किशोर श्रीवास्तव

डॉ.कौशल किशोर श्रीवास्तव
जन्मतिथि: 15 सितंबर 1946
जन्म स्थान: विदिशा (म.प्र.)
प्रकाशित कृतियाँ
1. ट्यूबेक्टोमी एण्ड कास्टम (अंग्रेजी, 1980)
2. है प्यास अभी (गजल संग्रह)
3.सन्नाटा गहरा है, (गजल संग्रह)
4.आए न बालम (व्यंग्य संग्रह)
5.बाइज्जत बरी (व्यंग्य संग्रह)
6.हड़कंप (व्यंग्य संग्रह)
7.अखिलम, मधुरम (काव्य संग्रह)
8. प्रतिरोधक क्षमता (मेडिकल साइंस)

9. प्रति उत्तर(काव्य संग्रह)
10 मेरे सांई
11 गीता के औपनिषधिक आधार
12 देशी-विदेशी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेख प्रकाशित
सम्मान- पुरस्कारः विभिन्न शीर्ष स्तरीय संस्थाओं से पुरस्कृत एंव सम्मानित
सम्प्रति: 1.भूतपूर्व सदस्य: मानव अधिकार आयोग
2.सदस्य: किशोर न्यायपीठ,छिन्दवाडा
3. शल्य चिकित्सक,
4. सेवानिवृत्ति सीएमओ (मुख्य स्वास्थ्य एंव चिकित्सा अधिकारी)
1 संरक्षक - पत्रकारिता कोश मंच छिंदवाड़ा
2. उपाध्यक्ष - जिला रेडकास समिति सोसाइटी छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
3. आजीवन सदस्य इंडियन मेडिकल एसोसिएशन
4. मानव तंत्र मानव अधिकार आयोग
अन्य - स्वतंत्र लेखन राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में,
संपर्क - 171 नोनिया करबल, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
पिन 480001

अनुक्रमणिका

(अध्याय 1)
घाव की परिभाषा एवं प्रकार

अध्याय-2
घाव का प्रबन्धन (मेनेजमेंट)

अध्याय 4
इन्फ्लेमेशन (रक्तिम सूजन)
अध्याय 5
घाव भरने की अवस्थायें
अध्याय 6
विशेष अंगो के घाव
अध्याय 7
घाव और सूक्ष्म प्रतिक्रियाएं
अध्याय 8
संकेतों का फैलना
अध्याय 9
मेटाबालिज्म

अध्याय 11
घाव के स्थानीय उपचार

अध्याय 12
संक्रमण
अध्याय 13
संक्रामक बीमारियों में प्रतिरोधक क्षमता

(अध्याय 1)

घाव की परिभाषा एवं प्रकार

सरजरी के अधिकतर पुस्तकें घाव को परिभाषित करने से बिकती है उनमें घाव सम्बन्धी अन्य सभी क्रियाएं दी रहती है पर परिभाषा नहीं रहती है। वे ये मान कर चलती है कि पाठक घाव का मतलब समझता है।

सामान्य तौर पर किसी भी ऊतक की निरन्तरता का टूटना घाव कहलाता है। बाह्य तौर पर त्वचा या श्लेष्मा की निरन्तरता के टूटने को घाव कहते हैं। यदि बाह्य चोट के कारण त्वचा या श्लेष्मा की निरन्तरता में कमी नहीं आई है पर अन्दर के ऊतक टूट गये है तो उसे घाव नहीं कहते हैं। जैसे बाह्य चोट के निशान नहीं है पर नर्व टिशू टूट गये है तो हम उसे घाव नहीं कहते हैं पर यह गलत है। अतः सामान्य ऊतक की निरन्तरता टूटने को घाव कहेंगे।

चोट के कारक घटको पर घाव का प्रकार निर्भर करता है। घाव के प्रकार पर ही बहुत कुछ उसके भरने की गति निर्भर रहती है। कारक घटको के अनुसार घावों को निम्नानुसार वर्गीकृत कर सकते हैं।

(1) छिद्रित घाव (पन्चचार्ड वुन्ड)- ये घाव गहराई में अधिक होते हैं पर सतह पर बिन्दु के समान होते हैं। ये घाव इन्जेक्शन की सुई या पिन या गृहकार्यो में उपयोग की जाने वाली सुई जैसे बटन टांकने की या सिलाई मशीन की सुई से उत्पन्न भी होते हैं। जहाँ इंजेक्शन की सुई से संक्रमण का खतरा बहुत कम होता है वहीं अन्य प्रकार के छिछ्रित घावों से

संक्रमण का खतरा बहुत अधिक रहता है। यदि कोई विजातीय वस्तु (फारेन बाडी) अन्दर घुस जाती है तो उसके बाहर निकलने तक संक्रमण होता रहता है।

(3) गन शाट या फायर आर्म घाव - ये घाव पिस्टल या बन्दूक की गोली से होते हैं। इनका प्रवेश का घाव छोटा होता है। यदि करीब से गोली मारी गई है तो कोयला त्वचा पर या अन्दर जमा हो सकता है। पर इनके बाहर निकलने का घाव बड़ा और फटा हुआ होता है। आप्रेशन के दौरान कई बार गोली सीधाई में नहीं निकलती है। अस्थियों के बीच में आने से उसका रास्ता टकराने के कारण बदल सकता है। घाव के शरीर के अन्दर की दिशा से गोली कहां से आई है इसका अनुमान लगाया जा सकता है यह निम्न चित्रानुसार दर्शाया जा सकता है।

गोली अक्सर स्टराइल (असंकृमित) रहती है। क्योंकि उसके अन्दर का तापक्रम अत्यधिक रहता है अतः उसके साथ यदि विजातीय वस्तु यथा कपड़ा बगैरा अन्दर न गया हो और यदि उसने अन्दर के अंगो यथा आंतों फेफड़ा, हृदय यकृत, प्लीहा, मस्तिष्क इत्यादि को अधिक चोट न पहुंचाई है तो वे शरीर के अन्दर पड़ी रह सकती हैं। अन्यथा रक्त स्त्राव, संक्रमण इत्यादि के कारण वे प्राण-घातक तो होती ही है। कई बार उनके अन्दर का रास्ता भी ढूंढना मुश्किल होता है। वे आंतरिक अंगो के कई हिस्सो को चोट पहुंचाती हुई जाती है।

(3) कटा हुआ घाव (इन्साइज्ड कन्ड):- तेज धार वाले हथियार द्वारा ये घाव उत्पन्न होते है। ये घाव चाकू, आप्रेशन के दौरान, छुरी, फरसा, तलवार इत्यादि द्वारा उत्पन्न होते या पहुंचाये जाते हैं। जहां असंक्रमित सरजरी के घाव तीन दिन से आठ दिन के अन्दर जुड़ जाते हैं वही संक्रमित घावों से पीप बहती रहती है। कटे हुये घावों के किनारे साफ कटे हुये होते हैं। (यहां चाकू, छुरे, फरसा या कुल्हाड़ी या तलवार का चित्र दिया जा सकता है।

(4) छिला हुआ घाव (एब्रेजन)- खुरदुरी सतह पर फिसलने से ये घाव होते हैं बाल, धरती, पर लुड़कने से उत्पन्न घर्षण के कारण ये घाव होते हैं। इनसे त्वचा की ऊपरी सतह छिन जाती है। इनमें संक्रमण सम्भव है। ये दर्द भी अधिक देते हैं क्योंकि त्वचा के नीचे की "नर्व्स" चोटित हो जाती है।

(5) फटा हुआ घाव (लेसरेटड वुन्ड):- ये घाव कठोर एवं कुन्द हथियार द्वारा पहुंचाये जाते हैं। इनके किनारे अनियमित एवं फटे हुये होते हैं ये घाव

लाठी, बल्लम के ऊपर गिरने या पत्थर मारे जाने से पैदा हो सकते हैं। ये संक्रमित हो जाते हैं।

(6) कुचला हुआ घाव (कश्ड कन्ड):- ये घाव वजनदार पत्थर या दीवाल के गिरने से पैदा होते हैं। इन घावों में अन्दर का हिस्सा कुचला जाता है। नीचे की हड्यिों भी कुचल जाती है। इन घावों में धूल के कण शरीर के कुचले हुये हर हिस्से में हो जाते हैं अतः इन घावों के संक्रमित होने की सम्भावना रहती है।

(7) स्टेव घाव:- ये घाव नुकीले हथियार जैसे चाकू या छुरी पहुँचाये जाते हैं। इनकी चैड़ाई कम व गहराई अधिक होती है। ये सीने में हृदय फेफड़ों या उदर में यकृत प्लीहा या आंतों को काट देते हैं। जब ये ठोस अंगों को काटते हैं तो रक्त स्त्राव अधिक होता है पर आंतों इत्यादि को छेदते हैं तो संक्रमण अधिक होता है।

(8) (कन्ट्यूजन):- नीली सूजन निशान: इन्हें घावों की परिभाषा में नहीं ले सकते। इसे मध्य भारत में गूमड़ा भी कहते हैं। यह मुंदी चोट रहती है जिसमें त्वचा के नीचे खून इकट्ठा हो जाता है। इसके संक्रमित होने की संभावना भी रहती हैं इसका महत्व मेडिकोलीगल प्रकरणों में समय बतलाने के लिये होता है समय के बीतने पर इनका रंग परिवर्तन होता है इनको देखकर इनका समय बतलाया जा सकता है।

(9) जलना: जलना, ज्वाला, अंगार, फटाके गरम पानी, अम्ल (एसिड) या क्षार (अलकली) से हो सकता हैं इसमें अत्यन्त जलन वाली सूजन से लेकर छाला उठना या सीधा जलना तक हो सकता है। गरम पानी से जलने को स्काल्ड, और एसिड फेंकने को बिट्रियोरेज कहते है। भारत में महिलाओं की हत्या (कभी कभी पुरूषो की भी) या आत्महत्या केरोसिन (या कभी कभी पेट्रोल छिड़क कर) आग लगाने से अधिक की जाती है। इस तरह से जलने में लगभग पूरा शरीर जल जाता है। कभी-कभी धार के निशान और अक्सर केरोसिन या पेट्रोल की तेज गन्ध, कारक पदार्थ का पता बता देता है।

(10) बिजली का करेन्ट: अधिकतर से प्रकरण दुर्घटना के कारण या बिजली चोरी में होते हैं इन दुर्घटनाओं में तार के छूने के कारण काला गड्ढा पड़ जाता है।

अध्याय-2

घाव का प्रबन्धन (मेनेजमेंट)

घाव का इलाज हम मुख्य रूप से दो भागो में बांट सकते हैं

(1) सामान्य एवं (2) विशिष्ट

सामान्य प्रबन्धन (जनरल मेनेजमेंट) सब प्रकार के घावों में लगभग एक सा होता है। हर घाव टिटनेस का खतरा लिये होता है।

(1) टिटनेस से बचाव

टिटनेस के बेक्टीरिया गोबर, मल, धूल, शरीर या किसी भी वस्तु में हो सकते हैं। घाव के संक्रमित होने पर एवं विशेषकर अनओषजनित (अनआक्सीडेटेड) अवस्था में अधिक होते हैं। कुचले घाव या पैर के घाव में सम्भावना अधिक होती है। सिर के घावों के बाद टिटनेस जल्दी होता है। "टिटनेस, क्लास्ट्रिडियम" समूह के जीवाणु से होती है। इसका इन्क्यूवेशन समय 4 दिन से आठ दिन का होता है। इसके संक्रमण से पहले घाव के पास चारों ओर दर्द होता है एवं मांस पेशियों में तनाव, उत्पन्न हो जाता है। फिर यह फैल कर शरीर सीधा करने वाली मांस पेशियों में फैल जाता है। शरीर में झटके आने लगते हैं। चेहरे का नीचे का हिस्सा बंद हो जाता है। खाने पीने में तकलीफ होने लगती है। शरीर धनुष के आकार का हो जाता है। यह बीमारी जान लेवा होती है।।

टिटनेस का बचाव दो तरह का होता है।

(1) अक्रिय एवं (विस्तृत विवरण के लिये लेखको की इम्मूनिटी नामक पुस्तक देखे)

(2) सक्रिय

अक्रिय या पेसिव इम्यूनाइजेशन: इस बचाव में जिन मरीजों का सक्रिय बचाव टिटनेस टाक्साइड इंजेक्शन से न किया हो उन्हे बीमारी की सम्भावना अधिक रहती हैं। उन्हें बीमारी की सम्भावना में ए.टी.एस. के इंजेक्शन दिये जाते हैं। ये इंजेक्शन घोड़े के सीरम से बनते हैं अतः इनमें "एनाफायलेक्सिस" की संभावना रहती हैं अतः इन्हें टेस्ट करके लगाते हैं। इसकी मात्रा 1500 यूनिट्स रहती है।

सक्रिय इम्यूनाइजेशन

सक्रिय इम्यूनाइजेशन या प्रतिरोधन भारत सरकार के यूनिवर्सल इम्यूनाइजेशन प्रोग्राम या यू.आई.पी. में सम्मिलित है। इस कार्यक्रम में टिटनेसटाक्साइड के इंजेक्शन मां को गर्भधारण से ही दिये जाते हैं, बल्कि किशोरियों को भी ये इंजेक्शन दिये जाते हैं।

शिशुओं को डी.पी.टी. इंजेक्शन ढेड माह, ढाई माह और साढ़े तीन माह की उम्र में ही लगा दिये जाते हैं। चोट लगने पर टिटनेस टाक्साइड के इंजेक्शन तत्काल दिये जाते हैं। फिर एक माह बाद पुनरावृति की जाती है।

घाव साफ करना

घाव साफ करने का मतलब होता है घाव को अच्छी तरह से साफ करना। घाव अक्सर धूल इत्यादि से भरे होते हैं उन्हें पानी की धार से तब तक धोना चाहिये जब तक कि नीचे का सक्रिय हिस्सा न दिखने लगे। घाव को नरम ब्रश, विसंक्रमित कपड़े या रूई से भी साफ करके धोया जा सकता है।

रक्त स्त्राव रोकना

कोई भी रक्त, स्त्राव दबाव से रोका जा सकता है। यदि बड़ी वाहिकायें रक्त् स्त्राव कर रही है तो आरट्री फोरसेप्स से पकड़ कर उन्हें बांधा जाता है। इसका विस्तृत वर्णन प्राथमिक उपचार नाम अध्याय से किया गया है।

डी ब्राइड मेन्ट

घाव की मृत त्वचा को काट कर निकाल देना चाहिये। हड्डी के ढीले टुकड़े निकाल दिये जाते हैं। मृत मांस पेशियों को काट कर निकाल फेंकते हैं। घाव को किनारो को काट कर एक सा कर देते हैं।

घावों को बन्द करना

(1) प्राथमिक रूप से घाव बन्द करना

घाव जब साफ सुथरा हो जैसे सरजरी के घाव, तब उनको प्राथमिक रूप से बन्द किया जा सकता है। घाव के अन्दर के ऊतक (टिशू) सतहों में बन्द किये जाते हैं। जैसे हड्डी से हड्डी, मांस पेशी से मांस पेशी, नर्व से नर्व रक्तवाहिकाओं से रक्त वाहिकायें एवं अन्त में त्वचा से त्वचा। त्वचा को धागे, स्टेपल या एडहीजिब टेप से जोड़ा जाता है। समय के साथ रक्त का जमना, एवं कोलेजन की क्रास लिन्किंग घाव को ताकत देती है। सर्जन, आप्रेशन के घाव इसी तरह बन्द करते हैं।

(2) विलम्बित प्राथमिक रूप से बन्द करना

घाव को बन्द करना कई दिनों के लिये तब जब रोक दिया जाता है तब तक संक्रमण समाप्त नहीं हो जाता। जब घाव साफ हो जाता है तब उसके किनारे जोड़े जाते हैं। सर्जन भी कई बार आप्रेशन के घाव एक दम बन्द नहीं करते। यदि उनमें अत्यधिक संक्रमण होता है तब।

(3) विलम्बित प्राथमिक बन्द होना

इसमें घाव खुला ही छोड़ दिया जाता है। घाव स्वयं की सिकुड कर नीचे से ऊपर भरता जाता है।

अध्याय 4

इन्फ्लेमेशन (रक्तिम सूजन)

चोट लगने या संक्रमण के बाद जो लाल रंग की सूजन आती है, उसे अंग्रेजी में "इन्फ्लेमेशन" कहते हैं। यह सूजन श्वेत रक्त कोशिकाओं, लसिका द्रव, सीरम इत्यादि के कारण होती है। श्वेत रक्त कोशिकाओं की रक्त वाहिकाओं से बाहर निकलने की चार स्थितियां होती है।

1. रोलिंग
2. कीमो एक्सेट्रेन्ट द्वारा क्रियाशीलता
3. कैद किया जाना
4. एन्डोथीलियम से बाहर जाना

1. रोलिंग

हमें ज्ञात है कि रक्त वाहिकाओं में लगातार रक्त बहता रहता है। यह रक्त प्रवाह कोशिकाओं को एक स्थान पर चिपकने से रोकता है। जहाँ इन्फ्लेमेशन होता है वहाँ से श्वेत रक्त कोषो को आकर्षित करने के लिये "सेल एडीसन मालीक्यूल घायल" कोषो द्वारा द्रवित किये जाते हैं। ये तत्व सेलेक्टिन ई.एवं पी. श्वेत रक्त कोषो के म्यूसिन सरीखे माल्यूकिल से जुड़ते हैं। ये खरोंचे गये रक्त कोष "एन्डोथीलियम" से चिपकते हैं पर बहाव के द्वारा बहा दिये जाते हैं पर वे पुनः चिपकते हैं इस तरह एक ढेर बना दिया जाता है। यह क्रिया रोलिंग कहलाती है। परन्तु इस क्रिया के लिये आवश्यक है कि एन्डोथीलियम भी खुरदरी हो। यह क्रिया अज्ञात है। (हम इन्फ्लेमेशन का शाब्दिक अर्थ समझ लें। फ्लेम का मतलब ज्वाला होता है।) इन्फ्लेम का अर्थ अन्दर की ज्वाला होता है। इन्फ्लेमेशन के चिन्हन निम्नानुसार बतलाये गये हैः

1. रयूवार या रक्तिम होना
2. डोलार का दर्द होना
3. ट्यूमार या सूजन
4. गर्म होना

2. कीमो एक्सट्रेन्ट

दो मुख्य प्रकार के कीमो एक्सट्रेप्ट पहचाने गये है:

1. इन्टर ल्यूकिन 8 (आइ.एल.8)
2. मेक्रोफेज इन्फ्लमेंटरी प्रोटीन (वी-एम. आई.जी-1. बी)

ये कीमो एक्सट्रेन्ट (खींचने वाले रासायनिक) एन्डोथीलियम (रक्त वाहिकाओं की आन्तरिक सतह) पर क्रिया कर उसे खुरदुरा बनाते हैं।

3. कैद किया जाना

ये कीमो एक्सट्रेन्ट श्वेत कोशिकाओं (न्यूट्रोफिल, लिम्फोसाइट, इओसिनोफिल मोनोसाइट, बेसोफिल इत्यादि) एवं प्लेटलेट को रक्त के बहाव में बहनें नहीं देते। ऊपर बतलाये गये सभी रासायनिक एण्टीबॉडी आई.जी. को भी खींचते हैं।

श्वेत रक्त कोषो के प्रकार

4. एन्डोथीलियम से बाहर आना

इसी समय रक्त वाहिकाओं को फैलाने वाले तत्व (वेसो-डायलेटर) उन पर काम करते हैं। इससे रक्त वाहिकाएं फैल जाती है एवं श्वेत रक्त कोष, सीरम, एण्टीबॉडीज इत्यादि बाहर आ जाते हैं और स्थानीय सूजन बढ़ा देते हैं।

श्वेत रक्त कोशिकाएँ एवं कणिकाएं

1. मोनोसाइट: इनमें एक केन्द्रक या न्यूक्लियस होता है। इनका प्रतिशत रक्त में 0-1 प्रतिशत होता है।
2. मेक्रोफेजेज: ये रक्त में सामान्यत नहीं होते, बल्कि ऊतको में कई मोनोसाइट मिलकर मेक्रोफेज बनाते हैं। मेक्रोफेजेज दीर्घ संक्रमण में बैक्टीरिया या बाह्ना तत्वों को निगलते हैं। (मेक्रोफेजेज दीर्घ संक्रमण में बैक्टीरिया या बाह्ना तत्वों को निगलते हैं (मेक्रो-बड़े फेजेज निगलने वाले)
3. पोलीमार्फ न्यूक्लियर ल्यूकोसाइट: इनका प्रतिशत रक्त में सबसे अधिक होता है। ये रक्त में 50-70 प्रतिशत तक होते हैं। संक्रमण पर पहुंचने वाले ये सबसे पहले कोशिकाएँ होते हैं इनमें कई केन्द्रक रहते हैं।
4. लिम्फोसाइट या लसिका कोशिकाएं: ये एक केन्द्रक वाली कोशिकाएं रहती है और रक्त में 20 से 48 प्रतिशत तक रहते हैं। एण्टीबॉडी बनाने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहता है।
5. बेसोफिल: ये हल्के नीले रंग से रंगे जाते हैं। इनका प्रतिशत 0-1 रहता है।
6. ईओसिनोफिल: रक्त में सामान्यतः ये 0-1 प्रतिशत रहते हैं पर एलर्जी में 10-15 प्रतिशत तक बढ़ जाते हैं। ये परजीवी संक्रमण में भी बढ़ जाते हैं। ट्रापिकल इओसिनोफिलया में ये 8 से 10 प्रतिशत हो जाते हैं (ईओसिनलाल)

कणिकाएं

प्लेटलेट: ये बगैर केन्द्रक के कण होते हैं एवं खून के थक्का जमने में मुख्य भाग लेते हैं। इनकी संख्या 2 से 4 लाख तक होती है। चोट लगने पर रक्त स्त्राव बंद करने में इनकी मुख्य भूमिका रहती है।

लाल रक्त कण: इन्ही के कारण खून का रंग लाल होता है। ये 1 क्यूबिक मिलीमीटर में 5 मिलियन तक होते हैं। इनका लाल रंग हीमोग्लोबिन के कारण होता है। हीमोग्लोबिन में मुख्य रूप से लोहा रहता है इसीलिए इसे लोहित भी कहते हैं। ये जब अलग हो जाते हैं तो सीरम शेष रहता है। इन्हीं के कारण विभिन्न रक्त समूह या ब्लड ग्रुप होते हैं।

यहां यह बात ध्यान देने की है कि श्वेत रक्त कोशिका को हीमोटाक्सिलीन एवं इयोसिन प्रक्रिया से रंगा जाता है। बेसोफिल नीलें रंग से रंग जाते हैं एवं इओसिनोफिलस के कण लाल रंग से रंगे जाते हैं। लिम्फोसाइट छोटे होते हैं और उनका केन्द्रक गहरा रंग जाता है। पोलीमारफोन्यूक्लिचर ल्यूकोसाइट के कई केन्द्रक होते हैं। प्लेटलेट के रंगने की क्रिया अलग होती है। लाल रंग के रक्त कण केन्द्रक के बगैर होते हैं।

अध्याय 5

घाव भरने की अवस्थायें

अंग्रेजी में हेल्थ हील से बना है

घाव का भरना एक जटिल प्रक्रिया है। यह कई कदमों में पूर्ण होती हैं अन्तिम क्रिया पूर्णता प्राप्त करना ही है। इसका मतलब त्वचा या श्लेश्मा का पूर्ण रूप

से घाव को ढ़कना है। इसके बाद यह क्रिया अत्यत्त धीमी पड़ जाती है। हालांकि इसके कई वर्षो बाद तक यह क्रिया चलती रहती है। यह क्रिया नियत बद्ध रूप में निम्न कदमों में सम्पन्न होती है।

(1) खून का थक्का जमना:- (कोएगुलेशन) हर घाव में पहले रक्त स्त्राव होता है। यह रक्त स्त्राव केपिलरीज या बड़ी रक्त की नलियों से होता हैं। फिर कटी हुई रक्त की नलियाँ सिकुड़ जाती है। क्योंकि घाव की जगह केटेकाल अमीन नामक रसायन स्त्रावित हो जाते हैं। रक्त वाहिकाओं को प्रभावित करने वाले अन्य हारमोन भी निकलते हैं। ये हारमोन मास्ट कोष से निकलते हैं जो त्वचा में या पूरे शरीर में बिखरे रहते हैं। ये हारमोन चोट की प्रतिक्रिया स्वरूप निकलते हैं इनके नाम ब्राडी कायनिन, सीरोटोनिन, हिस्टेमिन इत्यादि हैं। इन हारमोन्स से डायएपीडेसिस या कोषाकर्षण प्रक्रिया आरम्भ होती है जिसका मतलब श्वेत रक्त कोषों का रक्त नलिकाओं से घाव की तरफ आना प्रारम्भ हो जाता हैं। इनमें से प्लेटेलेट नामक कोष के कारण खून का थक्का जमना प्रारम्भ हो जाता हैं यह एक लम्बी प्रक्रिया है। प्लेटेलेट फाइबिन से घाव में ताकत उत्पन्न होती है।

(2) इनफ्लेमेशन:- इस प्रक्रिया में श्वेत रक्त कणिकायें घाव में अन्दर आती हैं। चैबीस घण्टों में बहुनाभिकीय श्वेत रक्त कोष घाव के अन्दर आ जाते हैं। फिर बहुकेन्द्रीय कोष और लसिका कई प्रकार के साइटोकाइन मुक्त करते हैं। इन्ही को पूर्व में ग्रोथकिक्टर कहते थे।

(3) फाइब्रोलैसिया:- (रेशीय निर्माण) इस अवस्था में कोलेजन का निमंत्रण होता हैं यह प्रक्रिया यद्यपि 24 घण्टे में प्रारम्भ हो कर 5 दिन में अधिकतम हो जाती हैं। सात दिन के पश्चात इसका निर्माण धीमा हो जाता हैं। पुर्ननिर्माण का मतलब कोलेजन कोलेजीनेज के द्वारा तोड़े जाते हैं और नये रखे जाते हैं। ये एक जाली की तरह रखे जाते हैं। इससे "स्कार" की ताकत बढ़ जाती है।

(4) ग्राउण्ड सव्सटेन्स (धरातल पदार्थ):- ये पदार्थ प्रोटीओग्लाइकान और ग्लाइकोसेमी ग्लाइकान से बने होते हैं। इनका घाव के भरने में बड़ा महत्व है। ये शाक एब्जार्वर या सदमा सहन करने वाले पदार्थ है। ये नमी रखते हैं। हायलेयूरोनिडेज एक ऐसा ही पदार्थ है इसका परमाणु भार ज्यादा होता है अतः यह द्रव के रूप में होता है इसलिये इसके अन्दर कोषीय विखण्डन होता है।

(5) घाव का सिकुड़ना:- घाव का सिकुड़ना शरीर की सर्वाधिक शक्तिशाली क्रिया है यह क्रिया प्राणियों में किस तरह होती है यह ठीक से समझा नहीं गया है। घाव भरने के लिए घाव का सिकुड़ना आवश्यक है लेकिन सामान्य से अधिक

होने पर यह कान्ट्रेक्चर नामक स्थिति को जन्म देती हैं कान्ट्रेक्शन (सिकुड़ना) घाव की गहराई में होता है और त्वचा घाव को ढकती चलती है जब

तक कि उसके सिरे मिल नहीं जाते। तब घाव पूर्ण रूप से त्वचा से ढ़का जाता है तब पूर्ण रूप से भरा माना जाता है।

कान्ट्रेक्चर के कारण भी पूर्ण रूप से समझे नहीं गये है। ये घाव जिनमें त्वचा की अधिक हानि होती है (जलना इत्यादि) एवं शरीर के आन्तरिक अंग (आंत पित्त नली इत्यादि) में कान्ट्रेक्चर
अधिक होते हैं। आन्तरिक नलियों में कान्ट्रेक्चर होने से वे अवरूद हो जाती है। कान्ट्रेक्चर का कारण जानने के लिये खुले घाव की पट्टी काट कर पानी में डाली गई। जब उनमें स्मूथ मसल्स को सिकोड़ने वाली दवायें (स्मूथ मसल्स एगोनिस्ट) मिलाई गई तो वे पट्टियां सिकुड गई और जब स्मूथ मसल एन्टोगोनिस्ट दवायें मिलाई गई जब वे पट्टियां फैल गई। इससे ज्ञात हुआ कि घाव सिकोड़ने के लिये मांस पेशी के रेशे रहते हैं इन्हे मायोफाइब्रो ब्लास्ट कहा गया। ये रेशे जलने के पश्चात की जोड़ो की विकृतियां डयूप्यूटेन कान्ट्रेक्चर और स्तन में सिलिकान गेंद के चारों तरफ पाये गये है। ये रेशे सिकुड़ने के समय से लेकर कान्ट्रेक्चर तक में पाये जाते हैं।

(6) एपीथिलाइजेशन:- शरीर का हर वह भाग जो वातावरण के सम्पर्क में है त्वचा से ढ़का है। घाव में त्वचा चारों तरफ से केन्द्र की तरफ बढ़ती है। त्वचा के दो भाग होते हैं "डर्मिस" और, एपीडर्मिस। एपीडर्मिस कई सतहों से मिल कर बनती है। यह सतह शरीर को द्रवहानि, संक्रमण और चोट से बचाती है।

त्वचा सतही करण में दो मुख्य कदम होते हैं 1 कोषो का सरकना एवं/2 कोषो का विभाजन। नये कोष, केशमूल तैलीय मूल, हेयर फोलीकिल और सीवेशियस सिस्ट से प्राप्त होते हैं। त्वचा के घाव दो तरह के होते हैं। पूर्ण मोटाई वाले या/आंशिक मोटाई वाले। इसी तरह त्वचा प्रत्यारोपण भी दो तरह का होता है। आंशिक एवं पूर्ण/मोटाई प्रत्यारोपण।

एपीथिलाइजेशन

शरीर का हर वह भाग जो वातावरण के सम्पर्क में है त्वचा से ढंका है। घटक में त्वचा चारों तरफ से केन्द्र की तरह बढ़ती है। त्वचा के दो भाग होते हैं "डर्मिस" और/एपीडर्मिस। एनीडर्मिस कई सतहो से मिल कर बनती है। यह सतह शरीर को द्रवहानि, संक्रमण और चोट से बचाती है।

त्वचा सतही कारण में मुख्य कदम होते हैं। 1 कोषो का सरकना एवं/2 कोषो का विभाजन। एक स्वस्थ भरते हुये घाव के किनारे पर सूजन नहीं होता उसके किनारे गुलाबी एवं फिसलन भरे होते हैं। उसकी सतह असंक्रमित रहती है। सतह पर स्वस्थ ग्रेनुलेशन टिशू होते हैं और स्लफ नहीं होता (देखे चित्र) चित्र 8 नये कोष केश मूल एवं तैलीय मूल हेयर फोलीफिल और सीवेशियस सिस्ट से प्राप्त होते हैं त्वचा के घाव दो तरह के होते हैं। पूर्ण मोटाई वाले या/आंशिक मोटाई वाले। इसी तरह त्वचा प्रत्यारोध भी दो तरह का होता है। आंशिक एवं/पूर्ण मोटाई प्रत्यारोपण।

घाव के सूक्ष्म घटक

साइटोकाइन्स: ये वृद्धि कारक घटक (ग्रोथ फेक्टर) मुख्यतः प्लेल्टेलेट्स से निकलते हैं और कोलेजन्स और त्वचा की वृद्धि उत्तेजित करते हैं। ये रक्त वाहिकाओं की वृद्धि करते हैं; टेन्डन और मांस पेशियों को ताकत देते हैं और अस्थियों को ताकत देते हैं।

पी.डी. जी. एफ (प्लेटेलेट डिराइव्हड ग्रोथ फेटरः प्लेटेलेट से उत्पन्न ग्रोथ फेक्टर) घाव भरने की कई क्रियाओं को आरम्भ करता है और कई साइटोकाइन्स को पैदा करता है। यह फाइब्रोप्लास्ट मेक्रोफेजो" और चिकने मांस कोषो (स्मूथ मसल सेल) को आकर्षित करता है।

टी.जी.एफ बीटा (टी सेल ग्रोथ फेक्टर) बीटा भी प्लेटेलेट से पैदा होता है। यह कोलेजन उत्पन्न करता है और उनकी संख्या बढ़ाता है। फाइब्रोप्लास्ट ग्रोथ फेक्टर (एफ.जी.एफ) हिलेरिन और हिपेरिन जैसे ग्लाइकोसो अमीनो ग्लाइकान से संयुक्त होता है। यह रक्त वाहिकाओं का निर्माण उत्तेजित करता है त्वचा के कोषो का सरकना एवं विखण्डन बढ़ाता है। यह घाव सिकोड़ता है। ई.जी. एफ (एपीडर्मल ग्रोथ फेक्टर) त्वचा का सरकना एवं निर्माण बढ़ाता है। इसकी क्रियाशीलता घाव के प्रोटीएज एन्जाइम से कम हो जाती है। इस तरह त्वचा के निर्माण का नियंत्रण होता है। एक्स्ट्रा सेलूलर मेट्रिक्स (बाह्य कोषीय आधार) कोलेजन इसका मुख्य घटक है यह टेन्डन, मांस पेशी अस्थियों इत्यादि में पाया

जाता है। इनके अलावा ग्लाइकोसीमीनो ग्लाइकान, प्रोटीनोग्लायकान, फाइब्रोनेक्टीन लेमिनिन एवं स्टेनिन भी रहते हैं।

कोलेजन का निर्माण

डी.एन.ए. पहले एम.आर.एन.ए. में बदलता है एम. आर. एन. ए. असमान एन्डोप्लाज्मिक जाली पर जमा होता है। परिपक्व कोलेजन में तीन पाली पेप्टाइड क्षंृखलायें रहती है। ये तीन क्षृंखलायें ग्लाइसिन पोलीन और दोनो का मिश्रण रहता है। फिर प्रोटीन अणु का हाइड्राक्सीलेशन होता है। इसके लिये विटामिन सी एवं आक्सीजन आवश्यक होता है। हाइड्राक्सीलेशन की अनुपस्थिति में कोलेजन कमजोर रहता है। कोजेलन के क्रासलिन्किंग में लाइसिल आक्सीडेज एन्जाइम की जरूरत रहती है।

अध्याय 6

विशेष अंगो के घाव

विशेष अंगो के घावों के भरने की विशेष प्रक्रियाऐं रहती है। घाव भरने के पहले अध्याय में हमने एक सामान्य प्रक्रिया का अध्ययन किया है।

आमाशय-आंतों का घाव

आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और पेप्सिन का स्त्राव निरन्तर होता रहता है। इस संयुक्त स्त्राव से उसकी श्लेश्मा (म्यूकोसा) नष्ट होती रहती है पर पुर्नजीवित भी हो जाती है। पर यदि श्लेष्मा आधार सतह (बेरामेन्ट मेम्ब्रेन) तक नष्ट हो जावे जो वह स्कार के साथ भरती है और ब्रण हो जाते हैं कण विटामिन्स की कमी कार्टीसान अधिकतर दर्द निवारक दवाओ, कीमो थेराप्यूटिक एजेन्ट से भी हो जाते हैं। ज्यादा जलने और ज्यादा चोट से भी अनेक सतही ब्रण हो जाते हैं जिससे उल्टी के खून आ जाता है इन्हें कलिंग अल्सर कहते हैं।

आंतों का जब एनास्टोमोसेस करते हैं (केटगट या स्टेपल से) तो जुड़ाव की ताकक टेन्साइल स्ट्रेन्थ से नापी जाती है मैनें सन 1971 आई.सी.एम.आर की फेलोशिप के तहत कुत्तो की आंतों का दो तरह से एनासटोमोसेस किया था। इन्वर्सन और ईवर्जन कर के।

आंतों को टेन्साइल स्ट्रेन्थ सवम्यूकोसा नामक सतह ही देती है। लेकिन ईवर्जन तरीके से "एड्हीजन" ज्यादा हो जाते हैं, तो अवांछित हैं। इसमें मैनें पाया कि ईवर्जन तरीके से टेन्साइल ताकत ज्यादा रहती है।

मांस पेशियाँ

मांस पेशियां मुख्यतः दो प्रकार की होती है एच्छिक और स्वतंत्र। एच्छिक का हम नियन्त्रण करते हैं और स्ट्रायटेड कहलाती है। हाथ पैर और धड़ इत्यादि की मांस पेशियां इस श्रेणी में आती है।

हृदय आंतों इत्यादि की मांस पेशियाँ स्वतन्त्र रूप से चलती रहती है। ये सिनसिटियल कहलाती है।

मांस पेशियों की कोई भी चोट हो सकती है वह फाइब्रोसिस से ही जुड़ती है। दिल की मांस पेशियों को रक्त न मिलने पर मृत्यु हो जाती है। इसे इन्फाक्रट कहते हैं। यह फाइब्रोसिस से ही जुड़ती है। इस तरह का हिस्सा बहुत

कमजोर हो जाता है और हृदय की क्षमता को कम कर देता है। "बालन्ट्री मसल्स जिन्हें हम अपनी इच्छा से चलित करते हैं उन्हें बीच का हिस्सा भी फाइब्रोसिस से ही जुड़ता है। इस तरह उन्हें कमजोर कर देता है।

हड्डियाँ

इनमें मात्र 8 से 10 प्रतिशत पानी होता हैं। बाकी कैल्शियम, फास्फेट, आर्गेनिक मिश्रण फास्फो प्रोटीन, अस्थि विशिष्ट ग्लाइकान सायलो प्रोटीन्स, आस्टीओनेक्टीन और ग्रोथ फेल्टर बीटा फाइब्रोब्लास्ट ग्रोथ फेक्टर और बोन माइफोजेनिक प्रोटीन होते हैं। हड्डियाँ सीधी तिरछी या घुमावदार तरीके से टूटती है।

उनका टूटना सामान्य, (कम्पाउण्ड) या क्लिष्ट हो सकता है। सामान्य में दोनो अंग (कम्युनिटेड) अन्दर ही रहते हैं। कम्पाउण्ड से सिरे त्वचा को छेद कर बाहर निकल आते हैं और कम्युनिटेड में दो से ज्यादा टुकड़े होते हैं।

हड्डी टूटने पर पहले बीच के हिस्से में खून जमा हो जाता है। फिर वह हिस्सा केलस में बदल जाता है चूँकि हड्यिों में ग्रोथ फेक्टर होते हैं अतः उससे ओस्टीओ ब्लास्ट नामक कोष आते हैं जिनमें केल्शियम जमा हो जाता है फिर री मोडिलिंग होती है जिसका मतलब होता है कि ओस्टीओ ब्लास्ट नामक कोष से अवाच्छित हड्डी घुलने लगती है। आस्टीअरे ब्लास्ट में सीरम एसिड फास्फेटेज कोलेजीनेम और एसिड हाइड्रोलेजेज एन्जाइम कैल्शियम को घोलते हैं। ग्रोथ फेक्टर होने के कारण हड्डियाँ शीघ्र ही प्रत्यारोपित की जा सकती है। एन्टीजेनिसिटी न होने के कारण एलोग्राफ्त भी स्वीकार कर लिये जाते हैं (देखे इश्युनिटी पुस्तक 9-10)

तंत्रिका तन्त्र

एक "नर्व" सेल में कई डेन्ड्रान्स होते हैं। न्यूरान का एक "डेन्ड्राइट" नर्व में शामिल हो जाता है। नर्व फाइबर में केन्द्र का हिस्सा एक्जान कहलाता है और उसे चारों ओर से माइलिन शीथ घेरे रहती है। ये एक्जान अगले गेन्गलिओन में सिनेप्स बनाती है। नर्व में तीन तरह की चोटे हो सकती है।

(1) एक्जानण्ट मेसिस

(2) न्यूरोनोट मेसिस और

(3) न्यूरो प्रेक्सिस

न्यूरोप्रेक्सिस में नर्व की आकृति में चोट नहीं लगती है जबकि एक्जानाटमेसिस मात्र एक्जान को चोट लगती है। न्यूरोनोटमेसिस में पूरी नर्व कट जाती है। न्यूरोप्रेक्सिया कुछ दिनों में ठीक हो जाती है। एकजानाहमेसि में मायलिन शीथ सामान्य रहती है। एक नर्व दो मि.मि. प्रतिदिन के हिसाब से बढ़ती है। जबकि न्यूरोटमेसिस में 2.5 से.मी. प्रतिमाह के हिसाब से बढ़ती है।

नर्व की चोट यदि साफ सुथरी है तो उनको प्राथमिक रूप से जोड़ा जा सकता है पर यदि साफ सुथरी नहीं है जो (यस 6 घंटे पुरानी है) 6 सप्ताह बाद जोड़ा जाता है। कई बार नर्व के टूटे सिरे न्यूरोमा बना देते हैं जिसमें टूटे सिरे पर दर्दनाक गठान बन जाती है। उसे फिर काट कर मांस पेशियों या हड्डी के अन्दर रख दिया जाता है।

एक और रोचक स्थिति होती है तो फेन्टम लिम्ब कहते हैं। जब पैर काट दिया जाता है (दुर्घटना या सड़ने पर) तब भी मरीज को ऐसा लगता है कि पैर साबुत है और दर्द दे रहा है। यह स्थिति समझाने पर समय के साथ सुलझाई जा सकती है।

दिमाग पर चोट

नाजुक मस्तिष्क खोपड़ी के अन्दर टंगा रहता है अतः खोपड़ी और दिमाग की बक्र या तिर्यक गति में कुछ देर के लिये वातावरण से सब दिमाग के न्यूरान्स का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध टूट जाता है और बेहोशी आ जाती है। दिमाग की सीधी चोटें नुकीले हथियारों से या बन्दूक की गोली या बलपूर्वक कठोर एवं कुन्द हथियार के प्रभाव से खोपड़ी के दिमाग के अन्दर घुसने पर आ सकती है। दिमाग की चोटे सामने की ओर अपेक्षाकृत कम हानिकारक होती है। लेखक को कई मरीजो का सामने का दिमाग काटना पड़ा या वह चोट के कारण बाहर वह गया इसके बाद भी कुछ दिनों या महिनों की बेहोशी के बाद वे मरीज ठीक हो गये।

अध्याय 7

घाव और सूक्ष्म प्रतिक्रियाएं

हमें ऊपर से देखने पर घाव का भरना एक स्थूल क्रिया लगती है पर अनगिनत परिवर्तन कोषीय स्तर से लेकर मस्तिष्क के स्तर तक होते हैं तब जाकर घाव भरता है। कभी कभी ये क्रियाऐं घाव भरने में असमर्थ भी हो जाती है।

कोषीय स्तर

हमें मालूम है कि एक कोष की भित्ति लाइपो प्रोटीन से बनी रहती है। उसके क्षति ग्रस्त होते ही कई रासासनिक स्त्रावित होने लगते हैं

(1) हीट शाक प्रोटीन:- ये प्रोटीन अणु स्तर की होती है। पहले उनका जलने के प्रकरणों में अध्ययन किया गया अतः "इन्हे हीट शाक" प्रोटीन कहते हैं उनका प्रभाव अज्ञात है।

(2) आक्सीजन फ्री रेडिकल्स:- इस आक्सीजन के बाहरी परिधि में मात्र एक इलेक्ट्राँन परिभ्रमण करता है।

एन्जाइम परआक्सीडेज से कोष भित्ति क्षतिग्रस्त हो जाती हैं तब ये रेडिकल भित्ति से स्त्रावित होते हैं एवं डिस्म्यूटेज एन्जाइम से उदासीन हो जाते हैं। उनका भी प्रभाव अज्ञात है।

एन्डोथीलियल स्तर (आन्तरिक सतह)

एन्डोथीलियम रक्तवाहिकाओं की आन्तरिक सतह होती है। यह एपीथिलियम के घाव होने पर महत्वपूर्ण कार्य करती है।

इसके क्षतिग्रस्त होने पर नाइट्रिक आक्साइड, एन्डोथेलीन, प्रोस्टाग्लान्डिन प्लेटेलेट एक्टीवेटिंग फेक्टर और धमनीय नेट्रियूरीटिक फेक्टर इत्यादि रासायनिको का स्त्राव होता ह। इन सबका स्थानीय वेसोमोटर प्रभाव होता है घाव होने पर "अमीनो पेप्टाइड" एन्डोथेलीन 1 एन्जियोटेन्सिन से दस गुना

अधिक प्रभावशाली होता है। जितना बड़ा घाव होता है उतनी ही अधिक एन्डोथेलिन की मात्रा रक्त में होती है।

एन्डोथिलियम, प्रोस्टासाइक्लिन और प्रोस्टाग्लाडिन्न बनाती है जिससे रक्तवाहिकायें चैड़ी होती हैं और प्लेटेलेट के गुच्छे बनते हैं। कोषीय झिल्ली में फास्फोलिपिड रहते हैं जो प्लेटेलेट एक्टीवेटिंग फेक्टर (पी.ए.एफ) भी है। पी.ए.एफ. रिसेप्टर एन्टागोनिस्ट को प्रयोगशाला में जानवरो को देने पर (रक्त स्त्राव जनित एवं सेप्टिक शाक में उनकी जीवन शक्ति बढ़ जाती है)

कोषीय स्तर निरन्तर:- साइटोकाइन्स: इनको अभी खोजा गया है। इनका प्रभाव पूरी तरह से नहीं समझा गया है। पर ये अन्तः स्त्रावी बर्हिस्त्रावी और समानान्तर स्त्रावी प्रभाव रखते हैं। इनमें इन्टरल्यूकिन्स, ट्यूमर, नेक्रोसिस, फेक्टर, इन्टरफेस केलीटिन्स काइनिन, सीरोटोनिन, हिस्टेमिन (देखे प्रतिरोधक क्षमता नामक पुस्तक) और ईकोसेजाइड है।
इन्टर ल्यूकिन प् - यह मुख्य रूप से लिम्फोसिटिक क्रियाकारक घटक है। यह शरीर का तापक्रम बढ़ाता है। यकृत में प्रोटीन निर्माण बढ़ाता है। घावों के होने पर मांस पेशियों के प्रोटीन का विखण्डन करता है। यह हाइपोथेलेमिक पिट्यूटरी एक्सिस को उत्तेजित करता है। यह शरीर की हर तरह की वृद्धि करता है।

इन्टर ल्यूकिन प्प् यह लिम्फोकाइनेटिक (प्रतिरोधक क्षमता वृद्धि कारक) है।

न्यूरो हारमोनल प्रतिक्रियाऐं

घाव होने पर शरीर की सारी व्यवस्थायें क्रियाशील हो जाती है। इन व्यवस्थाओं को क्रियाशील करने के लिये मुख्यतः रूप से तीन माध्यम कार्य करते हैं वे निम्न है-

(1) घायल कोष
(2) दर्द
(3) रक्त का कम होना

ये सब तत्व न्यूरो एन्डोक्राइन व्यवस्था को उत्तेजित करते हैं न्यूरो एन्डोक्राइन प्रतिक्रिया के लिये अनके तत्व क्रियाशील होते हैं जैसे रक्तायतन का कम होना आक्सीजन या कार्बन डाइऑक्साइड की रक्त में सान्द्रता, दर्द डर, तनाव, तापमान आदि।

न्यूरो एन्डोक्राइन की दो धुरियां होती है सिम्पेथेटिक एवं हायपोथेलेमास पिट्यूटरी घुरी। पहले सिम्पेथेटिक अति क्रियाशीलता सुषुम्ता एवं मस्तिष्क के

मेड्यूला भाग से होती है। अभी तक प्रयोग हायपोथेलेमस पिट्यूटरी के ए.सी.टी.एच एवं वेसोप्रेसिन नामक हारमोन पर ही किये गये है। अन्य हारमोन भी इसी तरह कार्य करते होंगें।

अध्याय 8

संकेतो का फैलना

ये संकेत दो यौगिको द्वारा भेजे जाते हैं

(1) पोलीपेप्टाइड एवं (2) एमाइड

पोलीपेप्टाईड के सिग्नल इन्सुलिन, ग्लूकेगान, आरजीनिन, वेसोप्रेसिन, इन्टर ल्युकिन ट्यूमर नेक्रोसिस फेक्टर, इन्टरफेरान एवं एन्डोथेलिन के माध्यम से कार्य करते हैं जबकि एमाइडस में सीरोटोनिन हिस्टेमिन एवं थायरेक्सिन आते हैं। ये रासायनिक उन मेम्ब्रेन रिसेप्टर पर कार्य करते हैं (1) जो गुयेनीन न्यूक्लियोटाइड वाईन्डिंग या जी प्रोटीन कहलाते हैं। ये कोष केल्सियम के द्वारा कार्य करते हैं। (2) इन्सुलिन एवं ग्रोथफेक्टर, साइक्लिक ऐडीनोसाइन मोनोफास्फेट कायनेज के माध्यम से कार्य करते हैं। (3) न्यूरोट्रान्समिटर मेम्ब्रेन के लिगेन्ट गेटेड आयन चेनल के माध्यम से कार्य करते हैं हीट शार्क प्रोटीन से उन्मुक्त किये रिसेप्टर से स्टीरायड एवं ट्राइआइडोथायरोनीन जुड़ जाते हैं ये कोष को केन्द्रक से संयुक्त होकर जीन बदल देते हैं।

न्यूरोहारमोनल व्यवस्थायें

ये व्यवस्थायें दो भागो में बांटी जाती है

(1) हायपोथेलेमिक पिटयूटरी धुरी

(2) आटोनोमिक नर्वस सिस्टम

(1) हायपोथेलेमिक पिट्यूटरी धुरी

हायपो का मतलब होता है नीचे। थेलेमेस मस्तिष्क का वह भाग है जिसमें शरीर की सारी वेदनाओं जाती है। हायपोथेलेमेस उसके नीचे का भाग होता है

पिट्यूटरी के दो भाग होते हैं

(1) सामने का

(2) पृष्ट भाग

सामने के भाग से (1) कारटीसोल (2) थायराइड नियन्त्रक हारमोन (टी.एस.एच.) (3) ग्रोथ हारमोन (4) गोनेडोट्रोफिन, हारमोन, (5) सेक्स हारमोन (6) प्रोलेक्टिन इत्यादि और पीछे के भाग सें (7) आन्तरिक अफीम निकलते हैं। आरजीनिन, वेसोप्रेसिन हायपोथेलेमस निकलते हैं। कार्टिसाल तनाव (चाहे वह मानसिक तनाव हो चाहे घाव हो, चाहे आप्रेशन हो) रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ाते हैं। यह ग्लूकोज ग्लूकोनियोजनेसिस नामक क्रिया से बढ़ता है नियोजेनेसिस का मतलब है नये तरीके से उत्पत्ति। इस क्रिया से प्रोटीन एवं फेट से ग्लूकोज बनाया जाता है। यह क्रिया यकृत में होती है। ग्लूकोनिओ जेनेसिस के कारण रक्त में फेटीएसिड एवं कीटोन वाटीज भी बढ़ जाती है।

गोनेडोट्रोफिन सेक्स हारमोन और प्रोलेक्टिन घाव होने पर बढ़ जाते हैं। ये हारमोन एनाबोलिक हारमोन है जिसका मतलब है शरीर का वजन बढ़ाना। प्रोलेक्टिन महिलाओं में स्तन का आकार एवं दुग्ध उत्पादन बढ़ाता है।

आन्तरिक अफीम दर्द कम करता है। ये एन्डोराफिन कहलाते हैं और रक्त वाहिकाओं हृदय और मेटावालिज्म पर भी प्रभाव डालते हैं। ये कई जगहो से निकलते हैं। उनका स्तर आप्रेशन सेप्टीसिमिया और घाव में बढ़ जाता है। ये अफीम की तरह के योगिक रहते हैं और प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

आरजीनिन वेसोप्रेसिन हायपोथेलेमस से निकलता है। ये पोलीपेप्टाइड है और गुर्दे पर प्रभाव डालता है ये गुर्दे के स्तर पर द्रव और इलेक्ट्रोलाइट का अवशोषण बढ़ाता है ये द्रव कम होने पर तत्काल स्त्रावित होते हैं।

आटोनोमिक नर्वस सिस्टम नियन्त्रण

आटोनामिक तंत्रिका तंत्र में दो व्यवस्थायें होती है-

(1) सिम्पेथेटिक (2) पेरासिम्पेथेटिक

चोटो के प्रति ये दोनो व्यवस्थाऐं मुख्य रूप से आन्तरिक अंगो का संचालन करती है। चोटो की प्रतिक्रिया स्वरूप आटोनोमिक नर्वस सिस्टम सक्रिय होता है।

चोट लगने के बाद दर्द की संवेदना सुशुम्ना एवं मस्तिष्क के निचले भाग में जाती है वहां से सिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र उत्तेजित होता है वह एड्रीनल ग्रन्थि (यह ग्रन्थि गुर्दे के ऊपर रहती है।) ने कई हारमोन उत्सर्जित करती है जो इस प्रकार है।

केटेकाल अमीन्स (एड्रीनलीन ः नार एड्रीनलीन) एल्डोस्टीरान, रेनिन एन्जियोटेन्सिन, इन्सुलिन एवं ग्लूकेगान,

केटेकोल अमीन, चोट, भय या ग्लूकोज की कमी से स्त्रावित होते हैं। 48 घन्टे बाद उनका स्तर मूल स्थिति में आ जाता है। ये ग्लूकोज का नव निर्माण एवं प्रोटीन चर्बी से करते हैं फल स्वरूप कीटोन्स भी बढ़ जाते हैं। ये परिवर्तन यकृत में होते हैं।

एल्डोस्टीरान एल्ड्रीनल ग्रन्थि से पिट्यूटरी के एल्डोस्टीरान स्टीमुलेटिंग हारमोन एन्जियाँ टेन्सिन या ए.सी.टी. एच और सीरम के उच्च स्तरीय प्रोटीन से निकलता है। एल्डोस्टीरान किडनी के स्तर पर सोडियम और क्लोराइड का अवेशोषण करता है और पोटेशियम बाहर निकालता है इस तरह द्रव की मात्रा रक्त में बढ़ जाती है।

रेनिन-एन्जिओटेन्सिन व्यवस्था गुर्दे में रहती है और किड़नी में द्रव की सान्द्रता एवं बीटा एड्रीनार्जिक उत्तेजना पर उसका स्तर पर निर्भर रहता है। रेनिन यकृत में एन्जिओटेन्सिस में बदलता है जो फेफड़े में एन्जिओ टेन्सिन दो में बदलता है। यह पदार्थ खून की नलियों को सिकोड़ता है और हृदय की गति एवं संकोचन बढ़ाता है। एन्जियओटेन्सिन चोट के एकदम बाद भी बढ़ जाता है। यह एल्डोस्टीरान को उत्तेजित करता है एवं सोडियम को रोकता है।

पेन्क्रीयाज का इन्सुलिन एवं ग्लूकेगोन, ग्लूकोज स्तर आटोनोमिक सक्रियता एवं हारमोन पर निर्भर करता है। इन्सुलिन प्राथमिक एनावालिक हारमोन है। यह ग्लूकोज प्रोटीन एवं फेट का संग्रह बढ़ाता है। तंत्रिका तंत्र से पहले इन्सुलिन का स्तर कम होता है फिर बढ़ता है। ग्लूकेगान, ग्लूकोनिओ जेनेसिस बढ़ाता है।

अध्याय 9

मेटाबालिज्म

एक स्वस्थ व्यक्ति को चैबीस घंटो के अन्दर 1800 केलोरी की आवश्यकता पड़ती है। यह आवश्यकता घाव होने पर अधिक बढ़ जाती है। घाव ठीक होने पर नये कोषो की मात्रा घाव भरनेके लिए बढ़ जाती है। अतः प्रोटीन वसा एव कार्बोहाइड्रेट तीनो की आवश्यकता बढ़ जाती है।

एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट में 4.5 कैलोरी निकलती है। एक ग्राम फेट में 9 केलोरी निकलती है। एक ग्राम प्रोटीन में भी 4.5 कैलोरी निकलती है। चँूकि एक ग्राम फेट में 9.5 केलोरी निकलती है। अतः उसे शरीर संग्रह करके रखता है। घाव होने पर ग्लूकोज का स्तर रक्त में बढ़ जाती है। इसके दो कारण है एक तो कोषो के इन्सुलिन का प्रतिशत बढ़ जाता है और दूसरी ओर केटेकाल अमीन्सय का भी स्तर बढ़ जाता है। घाव होने पर केलोरी की आवश्यकता 10 से 30 तक बढ़ जाती है इस समय शक्ति संग्रह आरम्भ हो जाता हैं इसे एनाबालिज्म कहते हैं। इस समय इन्सुलिन का स्तर कम हो जाता है। घाव के भरने के लिये प्रोटीन की आवश्यकता बढ़ जाती है क्योंकि कोष प्रोटीन से ही बनते हैं।

प्रोटीन की जरूरत पूरी करने पहले मांस पेशियों से प्रोटीन ली जाती है। यह चक्र मांस पेशियो, यकृत एवं घाव में पूरा होता है। आंते भी इस चक्र में भाग लेती हैं। अमीनो एसिड्स अवशोषित होकर यकृत में ग्लूकोज एवं प्रोटीन्स बनाते हैं। जब अमीनो एसिड्सि टूटते हैं तो नाइट्रोजन का स्तर बढ़ जाता हैं अतः नाइट्रोजन का मूत्र में उत्सर्जन बढ़ जाता है। सामान्यतः 24 घंटे में 14 ग्राम्स नाइट्रोजन उत्सर्जित होती है। घाव होने पर यह 50 ग्राम तक बढ़ सकती है।

इतनी नाइट्रोजन उत्सर्जित करने के लिये 300 ग्राम मांस पेशियां कम हो जाती है। ग्लूटेनिन मुख्य रूप से इस काम में लगाई जाती है। इस समय यदि ग्लूटेमिन नहीं ली जाती है तो बेक्टीरिया बढ़ जाते हैं एवं वहु अंग निष्क्रियता (मेल्टीपिल आरगन फेल्योर) हो जाती है। सामान्य परिस्थितियों से प्रोटीन उसके उत्सर्जन से ज्यादा ली जाती है।

बड़े घाव के पश्चात पेशाब कम निकलने लगती है क्योंकि घाव से द्रव अधिक बाहर निकल जाता है इस द्रव की भरपाई गुर्दो के द्वारा अधिक

सोडियम अवशोषित करने पर होती है। साथ ही घाव में कोषो के क्षतिग्रस्त होने पर रक्त में पोटेशियम बढ़ जाता है। यह सोडियम के बदले गुर्दे के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। इसी समय एल्डोस्टीरान और रेनिन एन्जियो टेन्सिन का स्तर बढ़ जाता है जो द्रव की मात्रा बढ़ाने के काम में आता है।

द्रव पहले केपीलरोज के बाहर अन्त्तकोषीय स्थान में आता है। जिससे सूजन बढ़ जाती है बाद में प्रोटीन की मात्रा रक्त में बढ़ने से द्रव अवशोषित हो जाता है यह ओसमोसिस के कारण होता है इससे घाव की सूजन कम हो जाती है।

अध्याय 10

घाव की देख रेख

घाव का भरना

प्राथमिक तरीके से घाव बंद करने के के लिये वर्तमान में निम्न तरीके अपनाये जाते हैं

(1) टांके लगाना:- टांको के लिये निम्न पदार्थ उपयोग में लाये जाते हैं।

(क) कपास का धागा

(2) नायलोन का धागा

(3) पीली ग्लाइकोलिक एसिड

2. रटेपिल

(3) एडिसिव टेप

उपरोक्त हरेक पदार्थ के गुण और सीमायें हैं इनमें कपास के धागे से घाव की टेन्साइल स्ट्रेन्थ अच्छी हो जाती है पर उसके रेशो के अन्छर बेक्टीरिया बढ़ते रहते हैं और संक्रमण की संभावना रहती है हालांकि उनके उपयोग से दाग कम पड़ते हैं।

मोनोफिलामेन्ट नायलोन कम प्रतिक्रिया करता है उसके कारण संक्रमण एवं दाग पड़ने की कम सम्भावनायें रहती है।

पोली ग्लायकोलिक एसिड एवं केटगट "घुल" जाते हैं यानि कि उनका शोषण हो जाता हैं इस दृष्टि से टांको के पदार्थ दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं।

(1) अघुलनशील जैसे

(अ) धागे - संक्रमित घाव में उपयोगी नहीं हैं

(ब) नायलोन

(स) स्टेपिल आदि

(2) घुलनशील जैसे

(अ) केटगट

पोली ग्लायकोलिक एसिड आदि।

स्टेपिल:- स्टील के उल्टे अ के आकार के होते हैं। इनका उपयोग आंतों को जोड़ने में अधिक किया जाता है। त्वचा में इनका प्रयोग ठीक है पर अनुचित ढंग से लगाने पर दाग की संभावना अधिक रहती है। चिपकने वाली पट्टियां त्वचा के लिये उचित रहती है। ये पट्टियां टांके निकलने के बाद भी त्वचा को चिपकाने के काम में आती है।

केटगट भेड़ो की आंतों की सब क्युकोसा से बनाई जाती है। यह दो तरह की होती है। सामान्य एवं क्रोमिक केंटगट क्रोमिक किसी प्लेन केटगट को कारबोलिक एसिड से उपचार करके बनाई जाती है। केटगट और पोलीग्लायकोलिक एसिड त्वचा के नीचे उपयोग में लाये जाते हैं। मानना है कि केटगट आदि को त्वचा के टांको में उपयोग में नहीं लाते हैं पर केटगट बच्चों की त्वचा और सभी आयु के हाथो आदि के टांके लगाने के काम में लाई जाती है।

घाव का ढंकना

टांके लगने के बाद या घाव में ओक्लूसिव या सेमी आक्लूसिव ड्रेसिंग उपयोग में लाई जाती है आक्लूसिव का मतलब है घाव को पूर्ण रूप से ढंक देना। यह ड्रेसिंग कुछ दिनों के लिये ढंक दी जाती है।

यदि घाव में स्त्राव होने की संभावना हो तो घाव मोटे पेड से सेमी-आक्लूसिव ड्रेसिंग से ढंक दिया जाता है जिससे गैस और नमी बाहर निकल सके। घाव में खुरट (स्केव) जमने पर घाव दर्द देता है। त्वचा का बढ़ना रोकता है एवं खुरंट निकलने पर रक्त स्त्राव हो सकता है अतः ऐसी ड्रेसिंग उपयोग में लाना चाहिये जो खुरंट न जमने दे।

भ्रूण में घाव भरना

गर्भाशय में ही भ्रूण की शल्यक्रिया की जाने लगी है। भ्रण के कोष सर्वशक्तिमान (ओमनी पोटेन्ट) होते हैं भ्रूरण में इन्फेक्शन नहीं होता है। यदि हायलयूरोनिक एसिड, कुछ सायटो कायनिन जैसे टी.जी.एफ. बीटा। पी.डी.एफ. और ई.सी. एफ. हटा दें तो इन्फलेमेशन यान रक्तिम प्रतिक्रिया हो सकती है। भ्रूण में हायल्यूरोनिक एसिड से घाव भरता है जबकि वयस्को में कोलेजन से।

घाव भरने की विशिष्ट समस्यायें

(1) कीलोइड

यह घाव भरने की एक असामान्य प्रक्रिया है। कीलायड घाव की सीमाओं के बाहर भी बढ़ता है। सामान्य परिस्थितियों में कोलेजन बनने और उसके शोषण के बीच एक समीकरण होता है। पर यह समीकरण कीलायड में कोलेजन के पक्ष में असामान्य रूप ये बढ़ जाता है। कीलायड सर्जरी से निकालने के पश्चात पुनः बढ़ जाता है जब तक कि विशेष इलाज पद्धति न अपनाई जावे।

कोलेजन में अधिक घुलनशील फाइब्रस टिशू रहते हैं। ऊतको के कल्चर में कीलायड से अधिक फायब्रस कोष उत्पन्न हुये। कीलायड में जल की मात्रा तुलनात्मक रूप से अधिक होती है यह ऊतक तुलनात्मक रूप से अधिक साइटोकाइन उत्पन्न करता है।

कीलायड के ज्ञात कारण

अधिक चाकलेट, टी.बी. का संक्रमण, शराब, कोका, काफी, एरीयेटेड पेय से कीलायड अधिक मात्रा में होते हैं। कीलायड अनुवांशिक हो सकते हैं। कुछ व्यक्तियों में कीलायड अज्ञात कारणे से अधिक मात्रा में पैदा होते हैं। कीलायड का इलाज: दबाव वाली ड्रेसिंग से इन्हें, रोका जा सकता है। कारणों के रोके जाने पर इन पर नियंत्रण संभव है। डायपेनिसिलेमीन एवं वीटाअमीनो प्रापायोज नाइट्रिल से कीलायड पर कुछ नियंत्रण पाया जा सकता है। ट्रायम्सीनोलोन के इंजेक्शन यदि स्कार के आसपास या उसमें लगाये जायें तो वे कीलायड के इलाज में अधिक प्रभावशाली होते हैं। ये इंजेक्शन 40 मि.ग्रा. प्रति एम.एल. की मात्रा में एक से डेढ़ माह के अन्दर से लगाये जाते हैं लेकिन अतिनियंत्रित डायबिटीज या उच्च रक्तचाप में ये इंजेक्शन नहीं दिये जाने चाहिये।

पहले पहल स्कार का रंग फीका पड़ जाता है एवं पतली त्वचा उन पर आने लगती है फिर धीरे धीरे ये आसपास की त्वचा के रंग के दो जाते हैं एवं गायब होने लगते हैं।

हायपर ट्राफिक स्कार

हासपर ट्राफिक स्कार में फायब्रस टिशू घाव की सीमाओं में रहता है। इसमें जले की मात्रा अपेक्षाकृत कम रहती है। ये समय के साथ स्वयं ठीक हो जाते हैं।

मारजोलिन अल्सर

यह एक केन्सर होता है। एक स्क्वेमस सेल केन्सर किसी भी दीर्घकालीन स्कार में हो सकता है। एक कारण यह भी है कि स्कार प्रतिरोधक तत्वों को घाव तक पहुंचने से रोकता है जिससे केन्सर सेल बढ़ते रहते हैं।

क्रानिक या दीर्घकालिक घाव

कोई भी घाव जो 15 दिन से अधिक का है और नहीं भर रहा है दीर्घकालिक घाव की श्रेणी में रखा जा सकता है। दीर्घकालिक घाव के किनारे मोटे हो जाते हैं। ये घाव के केन्द्र में ढलान लेते हुये नहीं होते हैं जैसे कि स्वस्थ घाव कार्तिक घाव के होते हैं। उनके किनारो का रंग नीला हो जाता है।

दीर्घकालिक सामान्य घाव

दबाव वाले द्रव (घाव) डायबिटीज के घाव या शिरा घाव (व्हीनस अल्सर) दीर्घकालीन घाव के उदाहरण है। ये घाव एक बिन्दु तक भरते हैं फिर उनका भरना रूक जाता है।

इलाज:- इन घावों का सिकुड़ना एवं एपीथिलाइजेशन आवश्यक है। इन घावों के कारणों का इलाज करना चाहिये। मधुमेह (डायबिटीज) का इलाज करना चाहिये। शिरा घावों में इलास्टिक स्टाकिंग पहनते हैं। दबाव वाले घावों का दबाव हटा देना चाहिये। संक्रमण एवं मृत ऊतको का इलाज करना चाहिये। हाइड्रोजन पराक्साइड या अल्केलाइन ड्रेसिंग सामान्य ऊतको की को भी मृत कर सकते हैं। अतः उनका उपयोग उचित नहीं है।

सेलाइन इर्रीगेशन (घाव का सेलाइन से तेज धार से धोना) से बक्टीरिया गहरे में जा सकते हैं। गीले ट्रायगाल (गीला निचोड़ी हुई पट्टी) से घाव का भरना एक उचित क्रिया है। इसमें मृत ऊतक एवं बेक्टीरिया गाज के साथ बाहर आ जाते हैं। शहद, मक्खी के लार्वा आटोहीमोथेरेपी एवं बी काम्पलेकय की ड्रेसिंग के बारे में आगे कहा जाता है।

अध्याय 11

घाव के स्थानीय उपचार

दीर्घकालीन घाव को भरने के लिये कई प्रयोग किये गये हैं इनमें से कुछ तो अत्यंत काल्पनिक और कुछ वैज्ञानिक आधार वाले हैं कुछ का वर्णन निम्नानुसार है। पाठक को उनका ज्ञान आद्यतन रखने के लिये लगातार अध्ययन रत रहने की सलाह दी जाती हैं।

(1) शहद:- विश्व के पूर्वीय भाग में दीर्घकालिक घाव के लिये शहद का उपयोग किया जाता है। इसका आधार यह बताया जाता है कि शहद प्रति संक्रमण (एन्टी सेप्टिक) होती है। इस कल्पना का कोई ठोस आधार नहीं है। दूसरी ओर शहद के उपयोग से खुले घाव के संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। यह हो सकता है कि शहद में कुछ पोषक तत्व होते हैं।

(2) लार्वा:- यह मनोरंजक प्रयोग पश्चिमी संसार की देन है। कुछ प्रयोगकर्ताओं ने घाव का मृत भाग निकालने उसे मक्खियों के लार्वा से संक्रमित किया। उनका कहना है कि लार्वा केवल तब तक सक्रिय रहते हैं जब तक कि मृत ऊतक घाव में रहते हैं इसके पश्चात वे मृत हो जाते हैं।

(3) स्वरक्त चिकित्सा:- यह क्रिया प्रतिरोधक क्षमता को मरीज के हित में परिवर्तित कर देती हैं। यह सम्भावना है कि दीर्घकालीन घाव में प्रतिरोधक क्षमता एक ऐसी स्थिति में आ जाती है जहां घाव बढ़ता तो नहीं है पर भरने और न भरने की स्थिति में यदि प्रतिरोधक क्षमता का घाव भरने के पक्ष में कर दिया जावे तो घाव न भरने को अवरोध टूट सकता है।

स्वरक्त चिकित्सा का तात्पर्य मरीज के स्वयं के रक्त का अन्तः पेशीय इंजेक्शन लगाना होता है। यह विधि अंग्रेजी की मेडिसिन की पुरानी पुस्तको में वर्णित है। यह विधि उन बीमारियों में अपनाई जाती थी जिनका कारण समझ में नहीं आता था। मेरे द्वारा स्वरक्त चिकित्सा के द्वारा जिन घावों का इलाज किया गया वे निम्नानुसार है।

क्रमांक	बीमारियां	पुरूष	महिलायें	कुल	परिणाम
1	मसूड़ो का संक्रमण	1	1	ठीक	
2	सीजेरियन संक्रमण/घाव	2	2	ठीक	
3	स्टम्प संक्रमण	1	1	2	
	ठीक				

4	सड़ा अण्डकोष	2	1	ठीक
5	संक्रमित घाव	2	2	ठीक

सीजेरियन सेक्शन का घाव ठीक हो गये थे। स्टाम्प संक्रमण में पहले हड्डियां मोटी हुई फिर घाव एक 80 वर्ष के पुरूष की ठीक हो गये। सड़ी टेस्टिज में सेमिनिफेरस ट्यूबस पहले बाहर आना प्रारम्भ हुई फिर घाव भर गया था। (80 वर्ष का पुरूष) हाथ के स्टम्प के संक्रमण में पहले हड्डियां मोटी हुई फिर त्वचा स्टम्प से चिपक गई और घाव ठीक हो गया था। मसूड़ो की पीप के प्रकरण में मरीज की डायबिटीज थी इस पद्धति से दवाइयों की मात्रायें कम की जा सकी और पीप अपना बन्द हो गई थी। (इस पद्धति की विस्तृत कार्य प्रणाली के लिये कृपया लेखक की प्रतिरोधक क्षमता नाम पुस्तक पढ़े-समय प्रकाशन नई दिल्ली पटना 2010, 83-87)

(4) विटामिन बी काम्पलेक्स एवं विटामिन सी काम्पलेक्स की ड्रेसिंग:- यह प्रयोग लेखकों की ही खोज है। यह मान कर कि घाव न भरने का एक कारण दीर्घकालीन घाव में अत्यधिक फाइब्रोसिस हे, जो पोषक तत्वो, विशेषकर पानी में घुलनशील विटामिन्स को घाव तक पहुंचाने में रोकती है यह विधि अपनाई गई थी। लेखक को इस विधि के उत्साहवर्धक परिणाम मिले।

घाव का भरना एक क्लिन्ट जैविक प्रक्रिया है। घाव के भरने में शरीर की सभी सामान्य व्यवस्थायें एवं स्थानीय परस्थितियां महत्वपूर्ण भाग लेती है। इनमें से किसी भी तत्व की न्यूनता दीर्घकालिक घाव को जन्म दे सकती है।

विटामिन बी काम्पलेक्स शरीरिक सतहों सथा श्लेष्टमा एवं त्वचा के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। विटामिन बी-1 या एन्यूरिन की कमी से पेलेग्रा नाम की बीमारी हो जाती है। राइबोफ्लेविन की कमी से जबान में छाले, चेहरे की त्वचा आंखे अन्डकोष की त्वचा एवं योनि की त्वचा में लाल रंग के सतही छाले हो जाते हैं। निकोटिनिक एसिड की कमी से मंुह के छाले होते हैं। पायरिडाक्सिन एन्जाइम पायरीडाइसोज एस फास्फेटेज की तरह काम करता है और अमीनो एसिड मेटाबालिज्म को प्रभावित कर त्वचा की बीमारियां पैदा कर सकता है। सायनोकोबालामीन आमाशय में बनता है और परनीशियस एनीमिया का इलाज है।

विटामिन सी घाव के सिकुड़ने, फाइब्रसटिशू बनने एवं घाव के भरने में सहायता करता हैं इस की कमी से स्कर्बी नामक बीमारी हो जाती है जिससे मसूड़ो से खून बहने लगते हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये दीर्घ कालीन घावों में विटामिन बी काम्पलेक्स सह विटामिन सी को पाउडर के रूप में

अत्यल्प रूप में घाव पर छिडक कर फिर उसी मल्हम की ड्रेसिंग की गई थी जो पहले से मरीज उपयोग में ला रहे थे पर जिससे उनका घाव ठीक नहीं हो पा रहा था।

परिणाम टेबिल रूप में नीचे दर्शाये गये है

टेबिल क्रमांक 1

क्रमांक	घाव का कारण	प्रकरण	प्रकरण
1	चोट एवं घाव का संक्रमण	1	17
2	जलना	2	
3	डायबिटिज घाव		1
4	सर्प दंश		1
5	पोस्ट आपरेटिव		1
6	त्वचा का संक्रमण	1	
		23	

टेबिल क्रमांक 2

क्रमांक	आयु वर्ग वर्षो में	लिंग		प्रकरण
		पु.	म.	
1	0 - 9	1	1	
2	10 - 19	7	1	8
3	20 - 29	6		6
4	30 एवं ऊपर	1	7	8
		15	8	23

टेबिल क्रमांक 3

घाव का क्षेत्रीय वितरण

		लिंग
1	गर्दन एवं शिर	2
2	धड़	1
3	ऊपरी बांह	1
4	टांगे	19
		23

चोटो के कारण

भरते हुए अधिकतर घावों का आकार या तो वृत या अण्डाकार होता है। यह सम्भवतः ऊतको की भौतिक शक्ति के कारण होता है। फाइब्रस टिशू चारों

तरफ से उनकी टेन्साइल, स्ट्रेथ घाव पर डालते हैं। इस प्रक्रिया से घाव के किनारे चारों तरफ से समीप आ जाते हैं।

घाव की दीर्घकालीनता के निम्न कारण हो सकते हैं-

(1) क्षतविक्षत ऊतको के पोषक तत्व कम हो जाते हैं।

(2) चोट से कोषीय प्रतिरोध कम हो जाता है।

(3) रक्त प्रवाह कम होना

(4) अनियमित फाइब्रोसिस

(5) ऊतको की सूजन

(6) शरीर में पोषक तत्वों की कमी

(7) संक्रमण

(8) मधुमेह

(9) क्रानिक रीनल फेल्योर

(10) फ्ल्यूड लागिंग (द्रवो का कैद होना) जैसे कन्जेस्टिव हार्ट फेल्योर, मिक्सीडीमा, लिम्फ्रीडीमा (लसिका की सूजन इत्यादि अवस्थायें)

टेबिल क्रमांक 4

पूर्वकृत ड्रेसिंग के परिणाम

क्रमांक	परिणाम	प्रकरण	परिणाम
1	घाव घटबढ़ गया	18	
2	कोई परिवर्तन नहीं	4	
3	घट गया	1	

टेबिल क्रमांक 5

क्रमांक	स्थानीय बी काम्पलेक्स सह सी के परिणाम	प्रकरण	प्रतिशत
1	पूर्ण ठीक हुये	7	
2	बहुत सुधार	15	
3	अपरिवर्तनीय	1	

विवेचना दीर्घघाव - एक दीर्घकालीन रूकी हुई प्रगति कहलाता हैं उसके किनारे फाइब्रेसिस के कारण उठे हुये होते हैं। फाइब्रोसिस पोषक तत्व के त्वचा या श्लेष्मा तक पहुँचने से रोकती है। एक विकल्प फिर भी बचता है कि विटामिन बी काम्पलेक्स और सी को सीधा हर घाव में लगा दिया जावे। क्योंकि विटामिन बी काम्पलेक्स कोष के एन्जाइम और को एन्जाइम बनाते हैं। इस अध्ययन में

कंट्रोल समूह में 69 में घाव का आकार बढ़ गया था जबकि अध्ययन समूह में 95 प्रकरणों में या तो काफी सुधर हुआ था या वे पूर्ण ठीक हो गये थे। एक प्रकरण केस स्टडी में चित्र क्रमांक एक में 5 तक एक ऐसे ही घाव में बी काम्पलेक्स एवं विटामिन सी की ड्रेसिंग के बाद घाव का तेजी से भरना दिखाया गया है। चित्र क्रमांक 2 दिनांक 18.11.2010 में घाव 5 सेमी का था उसी दिन से उसमें बी. काम्पलेक्स एवं विटामिन सी की ड्रेसिंग चालू की गई दिनांक 23.2.2010 के वह घाव चार से.मी. का हो गया। 27.11.10 को वह घाव 3 सेमी का हो गया एवं दिनांक 16.12.2010 वह मात्र 1 सेमी का रह गया। इसी प्रगति को ग्राफ के द्वारा दर्शाया गया है।

उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि दीर्घकालीन घाव में विटामिन बी. काम्पलेक्स उनकी कमी को दूर करता है। एक और महत्वपूर्ण तथ्य इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पानी में घुलनशील विटामिन्स एब्रेडेड त्वचा या उसके नीचे से सीधे ही अवशोषित हो जाते हैं। क्योंकि जब इन विटामिन्स को इन्ट्रावीनस रास्ते से सीधे ही दिया जा सकता है तो यह सम्भावना भी है कि ये घावों से सीधे ही अवशोषित हो जायें।

अध्याय 12

संक्रमण

बीमारी पैदा करने वाले सूक्ष्म जीवों के द्वारा शरीर में प्रवेश और शरीर की उनके और उनके प्रतिक्रियों स्वरूप परिणाम को संक्रमण कहते हैं उक्त परिभाषा में निम्न घटक कार्य करते हैं।

(1) सूक्ष्म जीवों द्वारा शरीर में प्रवेश

(2) उनके द्वारा विषैले पदार्थो का उत्सर्जन शरीर की सूक्ष्म जीवों और विषैले पदार्थो के विरूद्ध प्रतिक्रया। शल्य क्रिया में संक्रमण एक बड़ी समस्या है क्योंकि सूक्ष्म जीव एन्टीवायोटिक्स के विरूद्ध या तो प्रतिरोधक हो जाते हैं या उनकी स्ट्रेन बदल देते लेते हैं। यह समस्या चिकित्सालयों के प्राप्त बैक्टीरिया में अधिक होती जा रही है। शरीर का संक्रमण मुख्य रूप से तीन प्रकार के सूक्ष्म जीवों द्वारा होता है।

(1) वायरस (2) बैक्टीरिया (3) कोषीय जीव या पेरासाइट संक्रमण से जुड़ी कुछ परिभाषायें जानना आवश्यक है।

(1) स्व संक्रमण या आटोइन्फेशन का मतलब है शरीर में रहने वाले सूक्ष्म जीवों के द्वारा संक्रमण

(2) मोजो कोमियल संक्रमण का बैक्टीरिया से पैदा होते हैं।

मतलब है कि चिकित्सालय से प्राप्त संक्रमण

(3) सूक्ष्म जीवों की संख्या उनके द्वारा उत्पन्न हानिकारक तत्वों की हानि पहुंचाने की क्षमता।

(4) केरीयर या चालक उन लोगो को कहते हैं जिनमें हानिकारक जीवाणुओं तो ठीक है पर वे उनमें बीमारी उत्पन्न नहीं करतें।

(5) अपारचुनिस्टिक बैक्टीरिया या अवसरवादी बैक्टीरिया वे होते हैं जो सामान्यतः बीमारी पैदा नहीं करते पर प्रतिरोधक क्षमता कम होने पर बीमारी कर देते हैं।
(6) टाक्सिन वे विषैले पदार्थ होते हैं जो बैक्टीरिया की उपस्थिति से दूर हानिकारक प्रभाव पहुंचाते हैं। ये टिटनेस या स्ट्रेप्टो काकरन इत्याड़ि।
(7) एन्डोटेक्सिन वे हानिकारक तत्व होते हैं जो बैक्टीरिया की कोषीय भित्ति में होते हैं। ये लिपोपोली सेकराइड मेजबान पर नाटकीय प्रभाव डालते हैं जैसे तापक्रम का बढ़ना हृदय गति का बढ़ना एवं रक्त चाप का कम होना एन्डोटोक्सिन ग्राम निगेटिव बैक्टीरिया से पैदा होते हैं।

सेलुलाइटिस:- यह त्वचा का एवं त्वचा के नीचे का संक्रमण है और हानिकारक स्टेप्टो काकाई से होता है। इस में पीप नहीं पड़ती और संक्रमित भाग लाल गर्म और सूजा रहता है।
लिम्फेन्जाइटिस:- इसमें लूसिका नलिकायें लाल हो जाती है और सूज जाती है यह भी हीमोलिटिक स्ट्रेप्टोकाबाई से होते हैं इनका इलाज सिकाई आराम और बाह या टांग को ऊपर को ऊपर करके किया जाता है।
एरीसिपेलास:- लिम्फेन्जाइड़िटिस और सेल्यूलाइटिस का मिलाजुला रूप होता है।
एत्सिस:- पीन का एक जगह इकट्ठा होना एव्सेसिस कहलाता है और स्टेफाइलस काकस आरीयस नाम बैक्टीरिया से होता है इसको चीरा लगाकर बाहर निकालना आवश्यक होता है।
इम्पेटाइगो:- बहुत सारे अलग-अलग त्वचा के अन्दर के पीव के संग्रहो को एरीसिपेलास कहते हैं। स्ट्रेप्टो और स्टेफाइलोकास इसके मुख्य कारण है।
फोड़ा या फ्यूरन्कल:- किसी हेयर फालीकिल (वालों की जड़) में पीप का इकट्ठा होना फ्यूरन्कल कहलाता है यह अत्यन्त दर्द देती है यह सूजन लाल गोल उठी हुई और सीमा में रहती है। यदि वह वाले उखाड़ दिये जावे तो मुंह बन जाता है एवं पीप बाहर आ जाती है।
करवन्कल:- बहुत सारे बालो की जड़ों में एक ही स्थान में "पस" पड़ने पर फरन्कल कहलाती है यह सामान्यतः गरदन के पीछे रहती है यह डायबिटीज (मधुमेह) के रोगियों में अधिक होती है।
बैक्टीरिमिया:- बेक्टीरिया के छोटे-छोटे समूह जब एक स्थान से समयावधि में रक्त प्रवाह में छोड़े जाते हैं वह स्थिति बैक्टीरिनिया कहलाती है।

सेप्टीसीमिया:- बैक्टीरिया और उनके टाक्सिन्स का रक्त प्रवाह में प्रवेश सेप्टीसीमिया कहलाता हैं यह स्थिति (1) खुली रक्त वाहिनी (2) संक्रमित लिम्फ (लसिका द्रव या संक्रमित एम्ब्रोलाई का रक्त में प्रवेश के कारण होती है।
टाक्सीमिया:- जब टाक्सिन्स, रक्त प्रवाह में होते हैं तो स्थिति टाक्सीमिया कहलाती है। केवल टाक्सिन खाने से भी टाक्सीमिया हो जाता है जैसे वोटलिनम स्टेफाइलो काकल एन्टरोटाक्सिन से।
टाक्सीमिया एवं वेक्टीरिमिया से ठंड लगना, बुखार, भूख न लगना इत्यादि तकलीफें भी हो सकती है।
एक्जूडेट:- यह द्रव कोषो के बाहर संक्रमित स्थानों पर पाया जाता है यह रक्त कोषो के संक्रमित स्थान पर संक्रमित होने पर रक्तचाप अकोषीय द्रव लसिका द्रव के संग्रह से बनता हैं इसमें संक्रमण के कोष प्रोटीन द्रव इत्यादि रहता है। बैक्टीरिया के कोष प्रोटीन द्रव इत्याइि रहता है। बैक्टीरिया भी रहते हैं अतः इसका कल्चर एवं सेन्सिटिवी किया जा सकता है।
कल्चर में एक्जूडेट को अगार तश्तरी में एक्जूेडेटा को इनाकटक किया जाता है फिर 72 घंटे बाद बैक्टीरिया की बढ़ना देखा जाता है। सेन्सिटिविटी में उनके विकास का अवरोधा विभिन्न एन्टीबायोटिक्स से देखा जाता है।
संक्रमण के चिन्हन (कृपया लेखकों) द्वारा प्रतिरोधक क्षमता नामक पुस्तक पढ़े)
संक्रमण के दो आवश्यक अंग हैं
(1) शरीर के दो आवश्यक अंग है (2) संक्रमक जीव

प्रतिरोधक क्षमता के दो अंग है
(1) रासायनिक (2) कोषीय
रासायनिक प्रतिरोधक क्षमता सीरम की ग्लोकलिन नामक प्रोटीन में होती है। ये अंग विभिन्न तरह की एन्टीबाडीज कहलाते हैं। जैसे आई.जी. आई.जी.ई., आई. जी. ए. आइ.जी.डी. जी., आई.जी.ई. इत्याइि। यह तात्कालिक एवं दीर्घकाली कोषीय प्रतिरोधक क्षमता दो तरह की होती है।
(1) तात्कालिक (2) दीर्घकालीन
तात्कालिक प्रतिरोधक क्षमता में मुख्यतः पालीमोफो युक्तियर कोष भाग लेते हैं एवं दीर्घकालिक में मोनोसाइटस लसिका कोष भाग होते हैं। एन्टीबाडीज लसिका कोषो से स्त्रावित होते हैं।
संक्रमण के चिन्हन ये दो तरह के होते हैं
(1) स्थानीय

(अ) लालिमा (ब) तापक्रम बढ़ना (स) दर्द सूजन (द) फन्किशियो लीसा कार्य में अक्षमता

(2) सामान्य

इन लक्षणों में बुखार शरीर में दर्द, भूख न लगाना उल्टी आदि है।

लालिमा स्थानीय खून की नलियां चैड़ी होने के कारण होती है ये नलियां सीरोटोनिन ट्यूमर नेक्रोसिस फेक्टर, एस.आर.एस.ए. हिस्टेमिन इत्यादि के कारण चैड़ी होती है। उपरोक्त पदार्थ मास्ट सेल से स्त्रावित होते हैं। ये कोष टाक्सिन या बैक्टीरिया के चयापचय से उत्तेजित हो जाते हैं। सूजन बर्हिकोषीय एवं श्वेत रक्त कोष के कारण होती है जो लसिका द्रव या खून की नलियां चैड़े होने पर इकट्ठा हो जाता है। स्थानीय तापक्रम खून की नलियां चैड़ी होने के कारण एवं बैक्टीरिया के यथापचय से बढ़ जाता है। दर्द स्थानीय तंत्रिकाओं के उत्तेजित होने के कारण होता है।

रक्त कोष एवं कणिकायें

रक्त में मुख्य रूप से दो प्रकार की कोशिकाऐं रहती है एक वे जिनमें केन्द्रक होते हैं ये कोष कहे जायेंगे और एक वे जिनमें केन्द्रक निकल चुके होते हैं। इनमें लाल रक्त कोष एवं प्लेटलेट होते हैं।

श्वेत रक्त कोष एवं उनके कार्य

ये रक्त कोष हीमोटाक्सिलीन ईओसिन स्टेन में अलग पहचान देते हैं। इसका कोष भित्ति एवं केन्द्रक नीले रंग के होते हैं। साइटोप्लाज्म दानेदार एवं केन्द्रक गहरे नीले रंग का होता है। इनकी संख्या 4 हजार से 6 हतार प्रति क्यूगिक मिलि मीटर रहती है पर तीव्र संक्रमण पर 10 से 15 हजार प्रति मि.मी. हो जाती है। वहीं ल्येकोमिया इत्यादि में लाखें में पहँुच जाती है। इनके प्रकार एवं महत्व निम्नानुसार है

(1) पीलोमारफो न्यूक्जियर यूकोसाइटे:- इन कोषो में एक से अधिक न्यूक्लियस रहते हैं इनका प्रतिशत 50 से 60 प्रतिशत रहता है तीव्र प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक बढ़ जाते हैं। इनमें हल्के परीले रंग के कण साइटोप्लाज्म में रहते हैं।

(2) लिम्फो साइटस- इनका आकार छोटा होता है ये 30 से 40 प्रतिशत रहता है ये अपेक्षाकृत छोटे होते हैं दीर्घ संक्रमण में इनका प्रतिशत 50 से 60 प्रतिशत तक बढ़ जाता है।

(3) ईओसिनो फिल - ईओसिन का मतलब लाल होता है इनके साइटोप्लाज्म में लाल रंग के कण रहते हैं। सामान्यत ये 1 सेमी तक रहते हैं परजीवी संक्रमण

एवं एलार्जी में इनका प्रतिशत बढ़ जाता हैं इसी तरह ट्रापिकल इओसिनोफिलिया में ये बढ़ जाते हैं।

(4) बेसोफिल - इनका कोषीय द्रव गहरे नीले रंग का रहता है।

(5) मोनो साइट - ये रक्त में नहीं मिलते पर ये कोष त्वचा, फेफड़ो, आंतों में पाये जाते हैं एवं हिस्टेमीन आदि का स्त्राव करते हैं।

(6) सेक्रोफेज - ये कोषो में पाये जाते हैं एवं हिस्टेसीन आदि का स्त्राव करते हैं। एवं कई कोषो से मिल कर बनते हैं। ये बैक्टीरिया आदि का भक्षण करते हैं।

(7) प्लेलेट - खून का थक्का बनाने एवं रक्त स्त्राव रोकने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं ये 2 से 4 लाख प्रति क्यू मि.मी. रहते हैं। एड्स में ये बहुत कम हो जाते हैं।

लाल रक्त कोष -

इन कोषो के कारण खून का रंग लाल रहता है इनमें हीमोग्लोबिन रहता है। ये कोष हृदय से विभिन्न ऊतको में आक्सीजन पहुँचाते हैं एवं कार्बानाक्सी लेटेड खून विभिन्न ऊतको से फेंफड़ो तक पहुँचाते हैं। वहाँ कार्बन डाइआक्साइड सांस द्वारा बाहर निकल जाती है एवं आक्सीजन फेंफडत्रो के द्वारा हृदय में पहुंचती है। ये अवनोत्तल केन्द्र की तरह रहते हैं इनकी संख्या 40-50 लाख प्रति क्यू मि.मि. रहती है।

घाव के भरने में विभिन्न कोषो का महत्व पहले ही बतलाया जा चुका है।

अध्याय 13

संक्रामक बीमारियों में प्रतिरोधक क्षमता

चार प्रकार के मुख्य संक्रमण मनुष्यों को संक्रमित करते हैं:

1. विषाणु या वायरस
2. जीवाणु या बैक्टीरिया एवं फंगस
3. आदि जीव या प्रोटोजोआ एवं
4. कोषाधिक या मल्टी सेलूलर परजीवी यथा पेट के कीड़े, माइक्रोफाइलेरिया लेशमेनिया आदि

इन संक्रामकों को त्वचा एवं श्लेष्मा के अवरोध अन्दर प्रवेश नहीं करने देते। इस तरह बहुत सारे संक्रामक तत्व शरीर के अंदर प्रवेश नहीं कर पाते। ये दोनो अवरोध संक्रमण रोकने के प्रभावशाली माध्यम है।

इन अवरोधो में स्त्राव दूसरा अवरोधक माध्यम बनाते हैं। जैसे आँसू में ऐसे एन्जाइम रहते हैं जो विषाणुओं और जीवाणुओं को नष्ट कर बहा देते हैं। महिलाओं में अम्लीय योनि स्त्राव फंगस एवं बैक्टीरिया को नष्ट कर देते हैं। पेशाब में जीवाणु बहा दिये जाते हैं। नाक के स्त्राव जीवाणुओं को चिपका कर बाहर निकाल देते हैं। इसी तरह फेफड़ों के स्त्राव बैक्टीरिया को बाहर निकाल देते हैं। श्वांस नलिका के कोषीय केशो की गति नीचे से ऊपर होती है जो जीवाणुओं को श्लेष्म के साथ बाहर फेंकती हैं। आमाशय का अम्लीय स्त्राव जीवाणुओं को नष्ट कर देता है। इसी तरह आंतों का अति क्षारीय स्त्राव जीवाणुओं को नष्ट कर देता है।

शरीर में प्रवेश करने पर एण्टीबॉडीज, लसिका कोष एवं मेक्रोफेजस जीवाणुओं एवं विषाणुओं को नष्ट कर देते हैं।

दूसरी ओर संक्रमण तत्व उनकी एन्टीजेनिसिटी बदल कर प्रतिरोधक क्षमता से बचे रहते हैं वे या तो होस्ट के कोष में प्रवेश कर जाते हैं, या कुछ स्त्राव करते हैं या हिस्ट रिस्पान्स में बदल देते हैं। हम विभिन्न श्रेणियों की संक्रमण विशेषताओं का अध्ययन करेंगें।

वायरस

वायरस अनुकूल परिस्थितियों में जीवित प्राणी और प्रतिकूल परिस्थितियों में अजीवित प्राणी की तरह व्यवहार करते हैं। शरीर में इनका प्रवेश श्वसन तंत्र या पाचन तंत्र के द्वारा होता है। प्रवेश करने के उपरांत ये शरीर के कोषो में प्रवेश कर जाते हैं। यहां ये डी.एन.ए. या आर.एन.ए. से मिलकर प्रजनन करते हैं। कोष के विखण्डन पर ये नये कोषो में प्रवेश करते हैं। इस तरह मुख्यतः ये कोषो पर निर्भर रहते हैं।

कोषो में प्रवेश करने के कारण ये मेजबान की प्रतिरोधक क्षमता से बचे रहते हैं। वायरस के विरूद्ध प्रतिरोधक क्षमता इन्टरफेरान एवं एन के सेल के उत्प्रेरण से आती है।

आई.जी.ए. एन्टी बॉडी वायरस को कोष से युग्मन को रोकती है। आई.जी.जी. और आई.जी.एम. एन्टीबॉडी वायरस कणों को फेगोसाइट्स के द्वारा निगलना प्रेरित करती है और आई.जी.एम. एन्टीबॉडी वायरस आवरण का विखण्डन करती है।

हालांकि तात्कालिक समय में एण्टीबॉडी वायरस को कोष में प्रवेश करने से रोकती है। पर विलम्बित अवस्था में तो कोषीय प्रतिरोधक क्षमता ही वायरस को नियन्त्रित एवं नष्ट कर सकती है। सामान्य रूप से सी.डी.-4 टी.सी.कोष एवं

सी.डी.-8 टी.सी. कोष उनको नियन्त्रित करते हैं। ये कोष इन्टरफेरान, ट्यूमर नेक्रोसिस तत्व उत्पन्न करते हैं जो वायरस को नष्ट करते हैं।

अधिकतम वायरस संक्रमण में उनको संख्या तीन से चार दिन में बढ़ना प्रारम्भ होती है। सात से दस दिन में सर्वाधिक होती है फिर कम होने लगती है।

वायरस प्रतिरोधक क्षमता को कई प्रकार से नष्ट करते हैं। कुछ वायरस इन्टर फेरान ए एवं बी. का प्रभाव कम करते हैं। इन्फ्लुएन्जा वायरस मेजबान कोषों का प्रस्तुतीकरण कम करते हैं। कुछ वायरस टी.ए.पी. को कम करते हैं। कुछ वायरस सी.डी. 8 कोष की प्रस्तुतीकरण रोकते हैं।

कुछ वायरस मेजर हिस्टो कम्पेटिबिलिटी कणों को रोकते हैं इससे सी.डी. 8 कोषों का वायरस का प्रस्तुतीकरण रूक जाता है।

एण्टीबॉडी, कॉम्प्लीमेन्ट के द्वारा वायरस पर आक्रमण करती है। कई वायरस कॉम्प्लीमेन्ट व्यवस्था को तहस नहस कर देते हैं। इस तरह एन्टीबॉडी से बचे रहते हैं।

कुछ वायरस लगातार प्रतिजेनिक गुण बदलते रहते हैं। इसके मुख्य उदाहरण इन्फ्लुएंजा एवं ए.आई.व्ही. वायरस है। एच.आइ.व्ही. वायरस से एड्स होता है। एच.आइ.व्ही. वायरस इन्फ्लुएन्जा वायरस से पैंसठ गुना अधिक शीघ्र एण्टीजेनेसिटी बदलता है।

बहुत सारे वायरस सामान्य प्रतिरोधक क्षमता को कम कर देते हैं इनमें मम्पस. मीजल्स., ई.वी. वायरस, साइटेमेलेगी वायरस और एच.आई.व्ही. वायरस है।

बैक्टीरियल इन्फेक्सन

बैक्टीरिया शरीर में प्राकृतिक द्वारों द्वारा अन्दर प्रवेश कर सकते हैं ये प्राकृतिक द्वार नाक, मुंह, गला या जननांग हो सकते हैं या त्वचा या श्लेष्मा में छिद्र पाकर उनमें से प्रवेश कर सकते हैं। यदि बैक्टीरिया कोषों के बाहर रहे तो एण्टीबॉडी उन्हें नष्ट कर सकती है और यदि कोषों के अंदर रहे तो कोषीय प्रतिरोधक क्षमता यथा फेगो साइटोसिस के द्वारा निगले जा सकते हैं। यदि बैक्टीरिया की मात्रा कम रही या उनकी हानिकारक क्षमता कम रही तो स्थानीय संक्रमण होकर खत्म हो जाता है। यदि मारक क्षमता अधिक रही या मात्रा अधिक रही हो तो विस्तृत संक्रमण होकर खत्म हो जाता है। यदि मारक क्षमता अधिक रही या मात्रा अधिक रही तो विस्तृत संक्रमण हो जाता है। बैक्टीरिया के टॉक्सिन या तो बाहना हो सकते हैं या आंतरिक।

एण्टीबॉडी, विषों को न्यूट्रिलाइजेशन, अवक्षेपण, कॉम्प्लीमेन्ट फिक्सेशन, ओझोनिन कीमोटोक्सिन इत्यादि द्वारा निष्क्रिय किये जा सकते हैं। यदि बैक्टीरिया कोष में रहे तो डिलेड हाइपर सेन्सिटिविटी उत्पन्न करते हो तब फेगोसाइटोसिस द्वारा बैक्टीरिया निगल लिये जाते हैं।

बैक्टीरिया चार तरह से संक्रमित करते हैं:

1. कोष से संलग्नीकरण
2. विभाजन
3. मेजबान ऊतको का संक्रमण
4. विष में मेजबान कोषो को हानि पहुंचाना

मेजबान की प्रतिरोधक क्षमता हर स्तर पर काम करती है मगर बैक्टीरिया ने भी प्रतिरोधक आक्रमण से बचने के कई तरीके निकाल रखा है।

कुछ बैक्टीरिया यथा ग्राम निगेटिव बैक्टीरिया वालो (सीलिया) के माध्यम से मेजबान कोषों से चिपक जाते हैं। पर टुसिस (कुकर खांसी) कोषो से चिपकने के लिए कुछ पदार्थ निकालते हैं। आई.जी.ए. एण्टीबॉडी इन चिपकने वाले पदार्थो को न्यूट्रेलाइज करते हैं। कुछ बैक्टीरिया इन एण्टीबॉडी को भी न्यूट्रेलाइज कर देते हैं। कुछ बैक्टीरिया की सतह पर ऐसे सतही एण्टीजेन होते हैं जो फेगोसाइटोसिस को रोकते हैं। कुछ बैक्टीरिया को एगुलेज पैदा करते हैं जो उनके चारों ओर फाइब्रिन की सतह पर बना देते हैं और फेगोसाइटोसिस से बचाता है जैसे स्टाइफिलो कोकाई का संक्रमण एक फोड़ा बना देता है। कुछ बैक्टीरिया फाइब्रिनोलिटिक एन्जाइम का स्त्राव करते हैं। और उनका संक्रमण जल्दी फैल जाता है। इसे सेलुलाइटिस कहते हैं। यह स्ट्रेप्टोकोकाइ का गुण है।

प्रतिरोधक क्षमता एक अत्यन्त जटिल एवं विचित्र प्रक्रिया है। हर बैक्टीरिया एवं एण्टीजेन के लिए एक ही एण्टीबॉडी होती है। इस तरह एक युवा में कई हजार एण्टीबॉडी रहती है।

बैक्टीरिया

स्ट्रेप्टोकाकई - सामान्यतः ये मंुह और फेरिक्स के प्लोरा है। प्लोरा वे बैक्टीरिया होते हैं जो उस अंग में बगैर बीमारी पैदा किये प्रचुर मात्रा में रहते हैं जैसे जैसे हम मंुह से आंतों में उतरते जाते हैं बैसिलाई बैक्टीरिया प्लोरा होते जाते हैं। ये मोल ग्राम पाजीटिव बैक्टीरिया छोटी जंजीरो की माफिक रहते हैं। अधिकतमर वायुजीवी (एरोबिक) होते हैं। कुछ अवायु जीवी (एनारोबिक) भी होते हैं इनकी फिर दो भागो में बांटा जाता हैं (1) हीमोलिटिक और (2) नान हीमोलिटिक हीमोफिलिक (रक्त की लाल कोशिकायें घोल देते हैं ये वीटा हीमोलिटिक स्ट्रेप्टोकोकाई कहलाते हैं वीटा हीमोलिटिक स्ट्रेप्टोकाकाई कहलाते हैं एक स्ट्रेप्टोकाइनेज और हायलुयूरोनिडेज पैदा करते हैं जो संक्रमण को फैलाते हैं। फेरिनजाइटिस स्कारलेट फीवर (लाल बुखार और रयूमेटिक फीवर इनके मुख्य संक्रमण है।

स्टेन्टोकाइल - डी संक्रमण कम हानिकारक है मगर स्ट्रेप्टोकल फभ्केलिस बड़ी आंत से छोटी आंत तक फैला रहता है। स्ट्रेप्टोकाकल विरिडेन्स अगार प्लेट पर हरा रंग उत्पन्न करते हैं।

(1) एरीसिपेलास और लिम्फेन्जाइटिस स्ट्रेप्टोकाकाई से होते हैं और जरा सी छिलने पर ये बैक्टीरिया अंदर चले जाते हैं इलाज सिफेलोस्पोरिन्स

(2) नेकोटाइजिंग फेसिआटिस एक प्राण घातक संक्रमण है जिसमें त्वचा और ऊपर की चर्बी की सतह सड़ जाती है। यह संक्रमण उदर के निचले भाग शिश्न, अण्डकोश की त्वचा, धड़ का निम्नतम भाग को सड़ा कर काला कर देता है। घाव से सड़ी मछली की तरह गंध आती है। घाव के काले रंग का द्रव निकलता है। यह संक्रमण जो विषैले तत्व उत्पन्न करता है वे पूरे शरीर में फैल जाते हैं। यह संक्रमण उदर के निचले भाग की शल्यक्रिया जैसे एवेन्डिक्स बोलोन बड़ी

आंत इत्यादि के कारण उन लोगो में फैलती है जिनकी प्रतिरोधकत क्षमता कम होती है।

इस रोग के प्रबंधन के लिये कई चीरे लगाकर सड़े ऊतको को काट कर फेंकना होता है। कभी कभी अनेक बार आपरेशन करने पड़ते हैं। एन्टीबायोटिक्स (प्रतिजैविक दवाइयों में सिफेलोस्पोरिन्स) सेफ्यूराक्साइम एक्सेटिल सेफक्सिम, सेफ्टीआक्सोनस साथ में अमीनो ग्लाइकोसाइडेस, क्लिन्डेमाइसिन मेट्रोनिडेला इत्यादि दिये जाते हैं।

(3) नेकोटाइजिया मायोसाइटिस - मासं पेशिया सड़ जाती है बहुत दर्द होता है अनेक जगह से पीप निकलता है। जिसमें खट्टी दुर्गन्ध आती है। संक्रमित मांस पेशी नरम बेंगनी।

इसका इलाज संक्रमित स्थान पर जगह जगह चीरे लगाये जाते हैं सडा पदार्थ बाहर निकाला जाता है। प्रतिजैविक दवाइयां एवं आवश्यक इलाज किया जाता है। नेलोनीज अल्सर ये घाव एनीरोविक स्टेप्टो काकाई (अनऔषजनिक स्ट्रेप्टो काकाई) के द्वारा होते हैं और सामान्यतः गरदन या काख आर्म पिट) की लसिका ग्रंथियों को निकालने के बाद होते हैं ये घाव अन्दर ही अन्दर बढ़ते जाते हैं सब अन्दर की अन्दर कई मार्ग बना लेते हैं यह घाव, सालो तक रह सकते हैं। इनका इलाज सड़े ऊतको को निकाल कर पेनिसिलीन या तीसरे वंश की सिफेलोस्पोरिन से किया जाता है।

स्टाफाइलो काकाई संक्रमण

ये बेक्टेरिया सामान्यतः त्वचा में रहते हैं। ग्राम स्टीन में पाजीटिव गोल बेक्टीरिया झुण्ड में रहते हैं। ब्लड अगार प्लेट पर से बीटा हीमोलिसिस पैदा करते हैं। इनकी दो प्रजातियां ही महत्वपूर्ण हैं कोएगुलेत पाजीटिव मेनीटाल का किण्वन करता है। से हीमोलाइसिस पैदा करते हैं अतः इन्हे आरीसय कहते हैं। आरम्भ मतलब सोना होता है।

दूसरा है स्टेफाइलोक्राकस एपीडरमीडिस। ये अवसर वादी बैक्टीरिया क्षत हृदय की मांस पेशियों में संक्रमण करते हैं। स्टेफाइलो काकाई (स्टेफ झुण्ड स्ट्रेप्टो जंजीर, त्वचा का एवं घाव का संक्रमण पैदा करते हैं। ये बालों की जड़ या तेलीय ग्रंथियों की जड़ का संक्रमण करके बायल सा करवन्कल बनाते हैं। ये संक्रमण दर्द सूजन एवं लालामी पैदा करते हैं। ये गाढ़ी पीली एवं दुर्गन्ध रहित पीप उत्पन्न करते हैं। से साफ सर्जीकल घाव का संक्रमण भी करते हैं। ये नोरजोकोमियल संक्रमण भी पैदा करते हैं।

बेमिलस एन्थ्रेसिस ये ग्राम पाजिहटव "राड्स" है और स्पोर बनाती है ये फेफड़ो, आंतों और त्वचा का संक्रमण करती है।
ये मेम्प्रेनस एन्टेरो कोलाइटिस भी पैदा करते हैं जो लगातार मंुह से दी जाने वाली एन्टीबायोटिक्स से पैदा होते हैं। इस बीमारी में दस्त पेट फुलना उल्टियां होने लगती है इस बीमारी को स्टेफाइलो काकल एन्टेरो कोलाइटिस भी कहते हैं। इसका इलाज है कि मंुह की एन्टीबायोटिक बंद करके मंुह से दी जाने वाली बेन्कोमाइसिन देते हैं। इसमें जब तक गटफ्लोरा दुबारा नहीं बन जाते तब तक एन्टीबोयोटिक नहीं देते। आजकल मंुह से दिये जाने वाले गटफ्लोरा भी मिलने लगे है।

पेप्टोकाकाई

ये एनीराबिक स्टेफाइलो काकई है जो बैक्टीराइड फ्लास्ट्रीडिया और इराबिक ग्राम निगेटिव राडस के साथ रहते हैं। ये घाव के संक्रमण, सेप्टीसीमिया और एब्सेसि में पाये जाते हैं।

क्लास्ट्रीडिया संक्रमण

यह बेक्टीरियन का बहुत बड़ा समूह है। ये ग्राम पाजीटिव राडस है और अवसदवादी एनीराबस है। ये मिट्टी मनुष्यों एवं पशुओं के मल में पाये जाते हैं। ये बैक्टीरिया वर्हिव्शि (एक्जोटोक्सिन) उत्पन्न करते हैं। जो ऊतको को सड़ाता है। ये गेस गेन्मीन (क्लास्ट्रीडिया परकिन्ब्जन्स) पैदा करते हैं। गेसे गेन्मीन लेसिथिनेज नामक एन्जाइम से पैदा होता है। अन्य एन्जाइम कोलेजिनेज टायलयूरोनिडेल और डिआक्सीरिबोन्यूविशेज है। (इनका वर्णन घाव भरने के समय किया जा चुका है)

क्लास्ट्रीडियूल सेजुलाइटिस में गहरे ऊतको में ग्रेस गेन्ग्रीन पैदा करता है। इसका उत्सर्जन दुर्गन्ध युक्त पीप युक्त होता हैं ये ऊतको में गैस के बुलबुले पैदा करता है। ये सड़न स्वस्थ ऊतको को प्रभावित करते हैं। ये सड़न स्वस्थ ऊतको को प्रभावित नहीं करती। जब घाव मिट्टी, कपड़े ये वस्त्र वस्तुओं से संक्रमित होते हैं तब यह अवस्था पैदा होती है।
क्लास्ट्रिडियम सेप्टीकम भी यही दशा पैदा करता है। इन अवस्थाओं में सड़े ऊतको को तत्काल निकालना होता है। पेनिसिलिन्स टेट्रासाईकिलनस सिफेलोस्पोरिन्स इस अवस्था में दिये जाते हैं। उच्च दबाव की आक्सीजन भी सहायता करती है। इस अवस्था में 24 घंटे की देरी भी जान लेवा हो सकती है।

स्यूडोमेम्प्रेनस कोलाइटिस (पूर्व वर्णित) में क्लास्ट्रिडियल डेफीसाइल भी संक्रमित करते हैं। एम्पिसिलिन फिलन्डेमासिन सिफेलोस्पोरिन के कारण यह स्थिति उत्पन्न होती है। फिर भी कोई भी एन्टीबायोटिक इसका कारण बन सकती है। इलाज के लिये उस एन्टीबायोटिक को बंद कर देते हैं। जिससे यह स्थिति उत्पन्न होती है फिर भी कोई भी एन्टीबायोटिक इसका कारण बन सकती हैं इलाज के लिये उस एन्टीबायोटिक को बंद कर देते हैं जिससे यह स्थिति पैदा हुई हो। मंुह से वेन्कोमाइसिन देते हैं मेट्रोनिडेजाल भी देते हैं। कोलीस्टीरेमिन विष को बांध लेता है। मरीज को अलग रखते हैं। टिटनेस का वर्णन किया जा चुका है।

ग्राम निगेटिव संक्रमण

ये बैक्टीरिया अधिकतर आंतों में रहते हैं और स्यूडोमोनस एन्टेरो बैक्टीरियेसी और बैक्टीरायड समूह के रहते हैं। स्यूडोमोनास:- ये एशेराव अवसरवादी बैक्टीरिया घाव की सतह पर गंभीर और प्राणघातक संक्रमण उत्पन्न करते हैं। अक्सर से संक्रमण केथेटरस विजातीय पिंड और कृत्रिम प्रश्वाक (वेन्टीलेटर पर रहते हैं) अन्तःशिरा नशीली दवाइयों से अस्थिर संक्रमण उत्पन्न करते हैं। ये बैक्टीरिया बाह्य एवं आन्तरिक विष उत्पन्न करते हैं। इनका इलाज जेन्टामाइसिन एवं टोब्रामाइसिन प्रतिजैविक है। ये प्रतिजैविक विरोधी होते जा रहे है।

सन्टेरो बैक्टीरियेसी:- ई.कोलाई आंतों में रहने वाला फेकल्टेविन एनीराव है। इनका अन्तःविष बहुत शक्तिशाली है। यह गंभीर शाक (सदमा) उत्पन्न करता है। ई.कोलाई से घाव का संक्रमण उदरान्तरिक पीठ पेशाब मार्ग का संक्रमण एवं हनदयान्तरिक संक्रमण (एन्डोकाडाईसिस) इनका इलाज एम्पीलिलिन एवं अमीनो ग्लाइकायड्स से किया जाता है।

सालमोनेला:- आंतों को संक्रमित करने वाले ये जीवाणु भोजन या पानी से आंतों में जाते हैं। ये आंतों का संक्रमण या मोतीझरा (टायफाइड) पैदा करते हैं। आंतों की लसिका ग्रंथियों या आंतों में छेद कर देता है इनका इलाज साइप्रोआक्सेसिन, सेफेक्सिम, सेफ्टिआक्सोम या सेफपोडाक्साइम है।

क्लेब्सिला:- ये अवसरवादी बेक्टीरिया है। ये हास्पिटल से मरीज को लग जाते हैं। ये घाव का संक्रमण न्यूमोनिया, एन्डोकाडाइटिस (हृदय की आन्तरिक झिल्ली का संक्रमण) या पेशाब मार्ग का संक्रमण पैदा करते हैं। इस परिवार के अन्य जीवाणु एन्टेरोबेक्टर, सेरेशिया मारसीसेन्स है। ये सब अमीनो ग्लाइकोसाइड्स से अच्छे हो जाते हैं।

प्रोटीयस:- इस परिवार के बैक्टीरिया, प्रोटीन, तोड़ कर यूरिया पैदा करते हैं। घाव, फोड़े, और जलने के घाव का संक्रमण करते हैं। इनका अमीनो अम्लो ग्लायकोसाइड्स से करते हैं।

एनीराबिक बैक्टीरिया एवं बेक्टीराइड

ये जीवाणु घाव से दुर्गन्धयुक्त युक्त स्त्राव उत्पन्न करते हैं। ये आवश्यक अवायुजीवी है। ये घाव के आसपास दुर्गन्ध युक्त वायु उत्पन्न करते हैं। सामान्यतः ये जीवाणु त्वचा मुख गुहा एवं बड़ी आंत में रहते हैं। बड़ी आंत से इनकी संख्या वायुजीवियों से अधिक रहती है। ये मुख्य रूप से श्वास मार्ग एवं आंतों के घावों को संक्रमण करते हैं ये उदरान्तिक संक्रमण भी करते हैं।

इनकी पहचान है कि माइक्रोस्कोप से ये ग्राम निगेटिव दिखते हैं पर वायु रक्त माध्यम में इनका कल्चर नहीं किया जा सकता। इनका इलाज पेनिसिलिन जी अमीनो ग्लायकोसाइड एवं मेट्रोनिडेजाल है। इससे अधिक आवश्यक इनके द्वारा उत्पन्न पीप का चीरा लगाना एवं बाहर निकालना है।

एक्टीनोमाइकोसिस फंगस

ये जीवाणु फफंूद से मिलते हैं। ये सामान्यतः मुख गुहा में रहते हैं। ये अवायुजीवी है और घाव में अत्यधिक फाइप्रोसिस उत्पन्न करते हैं। इनका इलाज पेनिसिलिन जी या टेट्रासाइक्लिन से किया जाता है।

फंगल (फफंूद) संक्रमण या माइकोसिस

ये अवसरवादी संक्रमक रहते हैं। कुछ वास्तविक संक्रमण के अनुगामी होते हैं। ये ब्रास्टोमाइकोसिस, पेराकाक्सी फंगल संक्रमण सिर (टीनिया केपिटिस) शरीर टीनिया कारपोसिस जांघे (टीनिया करिस) उंगलियों के बीच का हिस्सा इन्टर ट्राइगो भी होते हैं जो बाद में छाले या डायोइस हिस्टोप्लाज्मा एवं वंश के किप्टोकास वंश के रहते हैं। अवसरवादी म्यूकार, राइजोपस, एसपेरिपिलस और केन्डिका रहते हैं। सामान्य रूप से जब संक्रमण का कोई अन्य कारण नहीं मिलता तो फंगल बीमारियों के बारे में सोचना चाहिए। फंगल बीमारियों के चिन्ह्न त्वचा का संक्रमण, हल्का बुखार, वजन कम होना हैं एक दर्द करता जोड़, एक बहती हुई पस इसके उदाहरण है।

स्फोरट्राइकोसिस का संक्रमण कांटो से व्यक्ति को लगता हैं। इनसे त्वचा का संक्रमण होता है जो लसिका ग्रंथियों में जाता हैं। इसका इलाज पोटेसियम आयाडाइड और अन्तःशिरा एम्फोट्रेसिन बी है केन्डिडियल संक्रमण प्रतिरोधक क्षमता के कम होने पर दीर्घकालीन स्टीरायड का सेवन दीर्घ कालीन

एन्टीबायोटिक्स का सेवन और जलने पर होते हैं। ये फंगस मंुह में छाले और योनि मार्ग में छाले उत्पन्न करते हैं।

इन छालो में निस्टेनिन लगाया जाता है और एम्फोट्रेसिन बी अन्तः शिरा से दी जाती है। फंगल संक्रमण के लिये नई दवाइयां भी बाजार में आ गई है। लगाने के लिये निओस्पोरिन कीटो कोनेजाल, प्लकेनोजाल मल्हम एवं घोल एवं कीटोकोनेजोल, प्लूकेनीजोल गोलियां भी आने लगी है।

वायरल संक्रमण

ये आर.एन.ए. या डी.एन.ए. सत्र से बने रहते हैं पर इनसे दोनो एक साथ नहीं होते। जो महत्व के वायरस है वे साइटोमंगेलो वायरस हिपेटाइटिस समूह के वायरस (मुख्य रूप से हिपेटाइटिस वी एवं सी) एवं एच आई वी वायरस है (कृपया लेखको की) प्रतिरोधक क्षमता नामक पुस्तक पढ़े) साइटो मेगेलो वायरस प्रतिस्थापित अंग के मरीजो में आमाश्य एवं आंतों का संक्रमण कर रक्त स्त्रावण एवं छेद कर देता है। यह एक संघातक अवस्था होती हैं। हिपेटाइटिस बी का बचाव टीका उपलब्ध है।

(1) फंगस संक्रमण सिर (टीनिया केपिटिस) शरीर टीनिया कारपोरिस जांघे (टीनिया क्रूरिस) उंगलियों के बीच का हिस्सा (इन्टर ट्राइगो भी होते हैं जो बाद में छाले या फोड़े बन जाते हैं। (इस पुस्तक का प्रथम लेखक) डा. के.के.श्रीवास्तव एवं प्रोफेसर डा.एम.के.राय ने डीप गायकोसिस में पाया (

) कि एपेन्डिक्स एवं प्रोस्टेट ग्रंथि में भी फंगस इन्फेक्शन ( ) हो जाते हैं। से संक्रमण इनके शल्यक्रियोपरान्त घावों का संक्रमण कर सकते हैं।

परजीवी संक्रमण

कुछ मेगाटस घावों में इल्लियां पड़ जाती है ये खुले घाव, कुष्ठ रोग के घाव नाकंद में एट्रोफिकराइनाइटिस इत्यादि के घाव रहते हैं। नाके में इल्लियां या घावों में इल्लियां बहुत वेदना देती है।

ये मक्खियों के लार्वा रहते हैं। मक्खियां उनके अंडे खुले घावों या असंवेदनशील घाव में देती है। उनकी लार्वा बन जाते हैं। ये नाक के घावों में बहुत दर्द देते हैं। वैसे तो ये सभी घावों में दर्द देती हैं। इनका इलाज तारपीन के तेल की ड्रेसिंग है। रोज इन मृत जीवो को बाहर निकालना पड़ता है। कुछ ड्रेसिंग के बाद घाव साफ हो जाता है फिर सामान्य ड्रेसिंग करते हैं।

गिनी वर्म

यह बीमारी नहरूआ या नारू कहलाती है एवं भारत के राजस्थान और मध्यप्रदेश के गुना, सागर जिले के बसारी गांव इत्याड़ि में पाई जाती है। इसका

कारण यह है कि जहां बावड़ी (बड़ा कुआं जिसमें सीढ़ियां होती है एवं जिनमें उतर कर नहा सकते हैं) क्षेत्र में अधिकतर होती है। यह एक सत्राकार का परजीवी जिसे ड्रेकुनकुलस मेडीनेससिंग कहते हैं इसके कारण होती है यह परजीवी टांगो में छाले उत्पन्न करता है जिससे नारू के अंडे या सूत्र के भाग पानी में जाते हैं। नासमझ लोग निकले सूत्र को ही बावड़ी में पटक देते हैं।

अंडे पानी के साथ मनुष्य के पेट में चले जाते हैं विकसित परजीवी टांगो में लसिका व्यवस्था में पहुंच जाता है एवं मुख्यतः टांगो के निचले भाग के अंदर की तरफ छाले उत्पन्न करता है। इसका इलाज मेटोनिडेजाल है। यह बीमारी भारत शासन के उन्मूलन कार्यक्रम में सम्मिलित हैं

हाथी पांव -इस बीमारी में टांगे, अंडकोश की थैली और कभी बाहें मोटी हो जाती है अत्यधिक मोटे होने पर छाले पड़ सकते हैं। यह बीमारी बचेरेरिया वेन्कोफटाई नामक परजीवी से होती है। इस बीमारी में ठंड देकर बुखार आता है। लिम्फोडीमा इसकी पहचान है। इसका इलाज डाईइथाइल कारवेमेजीन की गोलियां है। भारत शासन वर्ष में एक बार सारे समाज को ये गोलियां एक साथ उपलब्ध करवाता है।

दीर्घघाव के संक्रमण

एक्टीनीमाइकोसिस - यह संक्रमण एक्टीनो माइकोसिस इजराइली नामक सूक्ष्म जीव से होता है। यह ग्राम पाजीटिव सूत्र है जो सामान्यतः मंुह में रहता है यह संक्रमण

मुख्यतः तीन अंगो को प्रभावित करता है

(1) जबड़ा और गरदन

(2) सीना

(3) एपेन्डिक्स एवं यकृत

निचले जबड़े और गरदन में संक्रमण संक्रमित दांत के कारण होता है सीने में भी संक्रमण (फेफड़ो की झिल्ली) फेफड़े इत्यादि को प्रभावित करती है।

उदर के दाहिने तरफ नीचे की ओर का संक्रमण संकरित एपेन्डिक्स से होता है। यकृत का संक्रमण सीधा एपेन्डिक्स या आमाशय के छेद से आता है।

एनटीनोमायकोसिस के संक्रमण में सूजन ज्यादा होती है पस पानी जैसी ही निकलती है और उसमें सल्फर के दाने रहते हैं जिन्हें "क्रश" करने पर "हाइफी" उस केन्द्र से जाते दिखते हैं।

इलाज, पेनिसिलिन या टेट्रासाइक्लिन है।

ट्यूबरक्युलोसिस

क्षय के कीटाणु त्वचा के कण पर सीधे ही जमा हो जाते हैं। यह बीमारी एसिड फास्ट बेसिलाई (इनका रंग एसिड से मुश्किल से निकलता है) से होता है। इन्हें काक्स वेसिलाई भी कहते हैं क्योंकि राबर्टकाक ने इन्हें 1882 में खोजा था। "लीजन" ट्युबरफिलिन कहलाता है क्योंकि केन्द्र में बेक्टीरिया होते हैं उसके चारों तरफ मेक्रोफेजेज रहते हैं। यह एक टुवरकिल होता है बाद में यह सब केजीयेट होकर एक समान हीमोजीनस पदार्थ में बदल जाता है। जब यह केजीएट पदार्थ बाहर निकाल दिया जाता है तो एक केविटी बन जाती है जो नीचे के चित्र में बतलाई गई है।

बैक्टीरिया मेक्रोफेज केजीयेशन केविटी

त्वचा में इनका संक्रमण सीधे ही बेक्टीरिया के जमने से होता है। इनके घाव के किनारे हल्के नीले रंग के होते हैं जो अन्दर गहरे होते हैं। तल पर स्लाइड से दबाने पर कई लाल रंग के दाने दिखते हैं।

इलाज के लिये निम्नलिखित दवाईयां काम में लाई जाती है।

(1) स्ट्रेप्टोमाइसिन इंजेक्शन

(2) आइसोनायेजायड

(3) रिफेम्प्रिन

(4) पायरेजिन एमाइड

(5) थायोसिटेजान

(6) पेराअमीनो सेलिसाइक्लिक एसिड

(7) टेट्रासाइक्लिन इत्यादि

तीन या चार दवाइयां एक साथ दी जाती है इलाज 6 माह से नौ माह तक चलता है। आजकल डाट्स तरीका उपयोग में लाते हैं।

केट स्क्रेच डिसीज

बिल्ली को काटने या खरोंचने के बाद संक्रमण होता है एवं बुखार आता है। यह संक्रमण ठीक हो जाता है फिर कुछ सप्ताह बाद स्थानीय लसिका ग्रन्थि बढ़ जाती है एवं पककर कर फूट जाती है। पस स्टेराइल होती है उसको ठीक से साफ करने के बाद बीमारी ठीक हो जाती है। निदान एन्टीजेन एन्टीबाडी प्रतिक्रिया से किया जाता है। यह बीमारी लिम्फोग्रेनुलोमा सिटाकोसिस समूह के वायरस से होती है।

याज

इस बीमारी के भी तीन स्तर होते हैं। प्राथमिक द्वितीय एवं तृतीय। यह बीमारी ट्रिपेटोमा परटिन्यू

नामक बैक्टीरिया से होती है और सिफिलिस के समान ही होती है। प्राथमिक छाला घुटने या टखने से होता है कभी कभी कोहनी में भी होती है। सिफिलिस की तरह वाशरमेन रीएक्शन धनात्मक होता है। द्वितीय स्तर में गुदा के आसपास और बांह में या टांगो में पेपिलोमा हो जाते हैं जिनकी त्वचा की ऊपरी सतह निकल जाती है और वे चार से बाहर सप्ताह बाद होते हैं तृतीय स्तर में गहरे छाले हो जाते हैं जो टीक होने पर स्कार को जन्म देते हैं। इलाज पेनिसिलिन और टेट्रासाइक्लिनस है।

कुष्ठ रोग (लेप्रोसी)

भारत शासन इस बीमारी को उन्मूलित करने के लिये कृत संकल्प है। यह बीमारी बेसिलस लेप्री नामक एसिडफास्ट बेसिलाई से होती है। इसके मुख्य रूप से दो रूप होते हैं।

(1) लेप्रोमेटस

(2) ट्यूबरकुलाइड

बीच में दो रूप और पहचाने गये है।

(3) इन्टरमीडियेट और

(4) डाइमारफस

जब होस्ट की प्रतिरोधक क्षमता कम होती है तब लेप्रोमेटस लेप्रोसी होती है और जब अधिक होती है जो ट्युबरकुलाइड लेप्रोसी होती है। यह बीमारी ऊपरी सतह और अपेक्षाकृत ठंडे भाग में अधिक होती है जैसे नाक का निचला भाग कान हाथ और पैर। इसमें ऊपरी तंत्रिकायें भी प्रभावित होती है जिसमें वे मोटी हो जाती है इस बीमारी में भोंहो का बाहरी भाग झड़ जाता है। कान मोटे जो जाते हैं। नाक चपटी हो जाती है। ये भाग संवेदना हीन हो जाते हैं। पीठ या हाथ में त्वचा का कोई भाग यदि अपेक्षाकृत रंगहीन तेलीय एवं

संवेदना हीन होता है तो कुष्ठ की संभावना रहती है। हाथ एवं पैरो की उंगलियों में छाले पड़ जाते हैं और वे संवेदना हीन होकर गलने लगते हैं। यही कारण हाथ एवं पैरो की विकृति का होता है। हाथ की आधी मुटिठंया बंद हो जाती है इसे क्लाहेण्ड कहते हैं पैरो की उंगलियां मुड जाती है इसे क्लाफुट कहते हैं। चेहरे की धारियां गहरी हो जाती है। संवेदना हीन होने से आंखो के अंदर छाले पड़ जाते हैं आंखे पूर्ण बंद हो जाती है। कान के आगे की तंत्रिका आंख के बाहर की तंत्रिका, एवं भौंहो के ऊपर की तंत्रिका मोटी हो जाती है चेहरे की आकृति सिंहाकृति के समान हो जाती है।

इस बीमारी का फैलाव सीधे सम्पर्क या नाक से निकलने वाली द्रव की बंूदो से होता है। कुष्ठ विभाग में काम करने वाले कार्यकर्ताओं और चिकित्सको में यह बीमारी नहीं होती है। इससे ज्ञात होता है कि यह बीमारी कुपोषित, गरीब व्यक्तियों या प्रतिरोधकता विहीन व्यक्तियों में अधिक होती है।

इलाज:- इस बीमारी को सामाजिक अभिशाप कतई न माना जाये यह सर्दी जुकाम की तरह एक बीमारी है अतः इसे छिपाया न जावे। मुख्य मुद्दा है

(1) इलाज या बचाव (2) विकृतियां (3) विकृतियों का इलाज

कुष्ठ रोग में निम्न औषधियां काम में आती है-

(1) डी.डी.एस (2) रिफेक्सिन

विकृतियों से बचाव:- हाथ और पैरो को जलने से बचाना चाहिये। आंखों को छालो से बचाना चाहिये मुझे दो मरीज विशेष याद आते हैं। एक व्याख्याता थे वे नियमित इलाज लेते रहे उन्हें विकृतियां हुई ही नहीं। दूसरा एक व्यापारी था उसको कनजक्टिवाइटिस हो गई थी। जो अच्छी होती ही नहीं थी जब उसे कुष्ठ की दवाइयां दी गई जब अच्छी हो गई।

जील नेलसन स्टेन (एसिड फास्ट स्टेन) टी.बी. एवं लेप्रोसी के बेक्टीरिया एसिड फास्ट बेक्टीरिया कहलाते हैं जिनमें लेप्रोसी के बैक्टीरिया कम एसिड फास्ट होते हैं यानि उन्हें पांच प्रतिशत एसिड से ही रंगहीन किया जा सकता है।

स्लाइड बनाने के बाद उसे स्प्रिट लैंप की हल्की आंच से फिक्स किया जाता है फिर उसको उबालने या भाप वाले कारवाल फस्विन से ढंक दिया जाता है। स्लाइड को सूखने नहीं दिया जाता उसके ऊपर कारबाल फस्चिन डालते रहते हैं। फिर स्लाइड को डिस्टिल्ड पानी और 75 अल्कोहल से धो देते हैं तत्पश्चात उसे 25ः सल्फ्यूरिक एसिड से तब तक धोते हैं जब तक कि उसका रंग न निकल जाये। अन्त में मिथाइलिन ब्लू से काउन्टर स्टेन करते हैं। स्लाइड को

आयल इमर्सन लेंस से देखा जाता है टी.बी. के बेक्टीरिया लाल रंग के और शेष कोष नीले रंग के दिखते हैं।

स्लाइड बनाने और उन्हें स्टेन करने का तरीका सीखने के लिये सलाह दी जाती है कि उन्हें प्रयोगशालाओं में सीखा जाये।

यौन जनित रोग

ये रोग यौन संसर्ग से पैदा होते हैं अतः अधिकतर यौन कार्यकर्ताओं, ट्रक चालको, कैदियों, होस्टलरो, ड्रग एडिक्ट्स, विस्थापितो एवं असावधानी पूर्वक किये गये यौन संबंधो के कारण होते हैं।

मुख्य रूप से ये निम्नानुसार है:-

(1) सिफलिस

(2) गोनोरिया

(3) लिम्फोग्रेनुलोमा इन्ग्वाइनेल

(4) ग्रेनुलोमा इन्ग्वाइनेल

(5) साफ्ट शेन्कर

(6) एड्स

(7) इन्फेक्शश हिपेटाइटिस

(8) टीनिया क्रूरिस

(9) पेडिकुलोसिस

(10) हरपीज

(11) ट्रेकोमेटिस

(12) कन्जावाइटिस

(13) आरथ्राइटिस इत्यादि

यहां केवल सिफलिस, गोनोरिया, लिम्फोग्रेनुलोमा इन्ग्वाइनेल, ग्रेनुलोमा इन्ग्वाइनेल एवं साफ्ट शेन्कर को लिया जायेगा।

सिफलिस

यह यौन जनित रोग प्राथमिक स्तर पर यौनांगो में छाला उत्पन्न करता है। ये छाले शिश्न, योनि एवं होंठो पर होते हैं। यह बीमारी ट्रिपेनोमा पेलीड्रम नामक बेक्टीरिया से होती है। प्रथम छाला संसर्ग के 10 दिन से 90 दिन के बीच उभरता है। यह दर्द नहीं देता है और इसका आधार मोटा होता है किनारे पन्चड आउट रहते हैं।

द्वितीय अवस्था:- यह अवस्था दो से बारह माह के अंदर होती है। शरीर की लसिका ग्रंन्थियां बढ़ जाती है विशेषकर कोदनी के ऊपर और खोपड़ी के पीछे।

बाल झड़ने लगते हैं शरीर में दोनो तरफ खुजली रहित लाल रंग के दाग उठ जाते हैं त्वचा और झिल्ली के बीच में मसे हो जाते हैं। इन्हें कान्डायलोमा कहते हैं। हड्डियों में दर्द होता है जोड़ो में सूजन आ जाती है आंखे लाल हो जाती है पुतली का रंग भद्दा हो जाता है। इसी बीच बुखार, एनीमिया हो जाता है।
तृतीय अवस्था:- यह संक्रमण के तीन वर्ष पश्चात होती है और अजीवन रहती है। इसका मुख्य चिन्ह्न गमा होता है जो शरीर के किसी भी भाग में हो सकता है। अण्डकोषो में "गमा" हो जाते हैं और यकृत में "सिरोसिस" हो जाता है। गमा के केन्द्र ने नेक्रोसिस (मृत ऊतक) रहता है जो "ग्रेनुलेशन ऊतक और फिर फाइब्रोसिस से घिरा रहता है। इस घाव के आधार धुले चमड़े और किनारे "पन्चड आऊट" रहते हैं। ये छाले टांगो, जांघो के पीछे बांहो और चेहरे पर रहते हैं।
(1) वाशर मेन रीएक्शन (2) कान टेस्ट (फ्लाकुलेशन) इलाज:- पेनिसिलिन्स।
इन्ग्लाइनेल
यह बीमारी सिटाकोसिस लिम्फोग्रेन्युलोमा इन्ग्वाइनेल नामक वायरस से होती है
निदान के प्रयोगशालीय परीक्षण:
प्राथमिक अवस्था:- मरीज को ज्ञात नहीं रहती
द्वितीय अवस्था:- संक्रमण के दो से 6 सप्ताह बाद होती है जांघो की जड़ो की लसिका ग्रंन्थियां बढ़ जाती है जिनसे गाढी पीली पीप निकलती है। फिर घाव बन जाते हैं। ये एक दो साल रह कर ठीक हो जाते हैं लसिका ग्रंथियों की फाइब्रोसिस के कारण अण्डकोष की थैलियों में हमेशा सूजन बनी रह सकती है।
जांचे:- स्किन टेस्ट, एन्टीजेन एन्टीबाडी टेस्ट, बायोप्सी
इलाज:- युग्म एन्टीबायोटिक्स/ग्रेन्युलोमा इल्ग्वाइनेल (पानी से भरी छोटी गठान जो एक घाव बन जाती है बाद में यह संक्रमण गर्भाशय तक पहुंच सकता है)
यह बीमारी डोनोवेनिया ग्रेनुलोमिटिस नामक ग्राम पाजीटिव जीवाणु से होती है।
जांच:- सूक्ष्मदर्शी से जांच
इलाज:- टेट्रासाइक्लिन प्रतिदिन दो ग्राम, 20 दिन तक
जांचे:- टिपेलोमा पेलिडम ईमोवेलाइजन टेस्ट:- मरीज के सीरम से बैक्टीरिया को निश्चय करते हैं (4) रीटर टेस्ट (काम्पलीमेन्ट फिक्सेशन टेस्ट)

सेन्क्रायड (साफ्ट शेन्कर)

यह बीमारी बेसिलस डूकी नामक जीवाणु से होती है। संसर्ग के दो या तीन बाद एक वेनिकिल होता है। एक सप्ताह बाद फूटकर छाला बन जाता है ये कई दर्द नाक छाले हो सकते हैं। फिर इन्गुवाइनल लिम्फ नोड (जांघो की जड़ो की लसिका ग्रंथियां) पक कर फूट जाती हैं

इलाज:- स्ट्रेप्टोमाइसिन इंजेक्शन या सल्फोनेमाइड/गोनोकाकाई/द्वारा बाहना मूत्र मार्ग के संक्रमण को कहते हैं। किडनी गुर्दे को आकृति के डिप्लोकाकाई (जोड़ी से रहने वाले) ग्राम निगेटिव कोकाई है। यौन संसर्गो के 2 से दस दिन के अंदर मूत्र द्वार पर चिपचिपा पदार्थ इकट्ठा होता हैं मूत्र द्वार लाल हो जाता है। फिर पेशाब के रास्ते पीला रंग का गाढ़ा चिपचिपा पदार्थ निकलने लगता है। पेशाब करने में असहनीस दर्द एवं जलन होने लगती हैं इसके बाद संक्रमण कारपोरा केवरनोसा और कारपस, स्पन्जियोसम (शिश्न की स्पन्जी शिरायें) में फैल जाता है। शिश्न मुड़ जाता हैं जिसे कारडी कहते हैं। संक्रमण पीछे की तरफ प्रोस्टेट ग्लेन्ड और सेमिनल बेसिकल (देखे लेख) को प्रभावित करता है तब पैरिनियम में दर्द होने लगता है। वीर्य स्खलन के समय खून निकल सकता है एवं बार बार वीर्य स्खलन होने लगता है। संक्रमण शुक्र वाहिकाओं और अण्डकोश में जाने पर जांघ और पीठ में दर्द होने लगता है। अण्डकोश सूज जाते हैं। बेसल सिस्टाइटिस होने पर पेशाब बार बार लगती है एवं दर्द होता है। बाद में मूत्र मार्ग रूक जाने पर पेशाब रूक जाती है तब मूत्रमार्ग चैड़ा करना पड़ता है।

काम्पलीकेशन:- आंखे लाल हो सकती है (कन्जक्टाइवाइटिस) हृदय का संक्रमण हो सकता है (एन्डोकारडाइटिस)

महिलाओं में संक्रमण:- योनिमार्ग चूँकि अंदर होता है अतः चिन्हन इतने स्पष्ट नहीं होते। काउपराइटिस या वारथेलिन ग्रंथि का संक्रमण होने पर पेरीनियम में दर्द हो सकता है। वे पक सकती है। डिम्ब वाहनियों का संक्रमण होने पर महिलायें बांझ हो सकती है। गर्भाशय का संक्रमण होने पर मासिक धर्म दर्द के साथ बार बार हो सकता है अन्यथा योनि मार्ग से पीला स्त्राव तो होने ही लगता है डिम्ब मार्ग का संक्रमण होने पर पीठ के निचले भाग में दर्द होता है।

शिशुओं में संक्रमण:- नवजात शिशुओं में नियोनेटल कनजक्टवाइटिस हो जाती है जिससें बार-बार पेनिसिलिन की बंदे डाली जाती है।

जांचे:- शिश्न के स्त्राव में नाइजीरिया गोनोरी देखे जाते हैं दीर्घ संक्रमण में पौरूषग्रंथि की मालिश कर स्त्राव निकाला जाता है।

इलाज:- पाम के (पेनेसिलिन एल्यूम्यूनियम मोनो स्टीयरेट) या पेनिसिलिन के इंजेक्शन या नवीनतम पेनिसिलिन की प्रतिजैविक औषधियां

प्रति जैविक पदार्थ (एन्टी माइक्रोबियल एजेन्ट)

एन्टी माइक्रोबियल एजेन्ट वे पदार्थ है जो मेजबान मरीज के ऊतको को हानि पहुंचाने बगैर सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देते हैं। ये दो तरह से होते हैं।
(1) रासायनिक या कीमोथेरोप्युटिक
(2) प्रतिजैविक जो बैक्टीरिया इत्यादि के कल्चर से प्राप्त होते हैं।
इन्हें अन्य दो तरह से भी बांटा जाता हैं
(1) बेक्टीरियो स्टेटिक एवं
(2) वेक्टीरियोसाइडल
बेक्टीरियोस्टेटिक वे पदार्थ होते हैं उन्हें जो बैक्टीरिया का बढ़ना रोक देते हैं मरीज के रक्षात्मक कोष नष्ट कर देते हैं। बेक्टीरीसाइडल वे पदार्थ है जो बैक्टीरिया को नष्ट करते हैं।
कीमोथेराप्युटिक एजेन्ट
मुख्य रूप से निम्न दवाइयां कीमोथेरोप्यूटिक समूह में आती है
(1) सल्फा समूह
(2) नाइट्रोप्यूरेन्टाइन
(3) आइसोनिकोटिनिक एसिड हाइड्रेजिड
(4) पेरा अमीनोसेलिसाइलिक एसिड
सल्फा समूह
ये बैक्टीरियोस्टेटिक है और सबसे पहले खोजे गये इस समूह में मुख्यतः निम्न पदार्थ आते हैं।
सल्फोनेमाइड:- ये समूह संक्रमण में उपस्थित पीप के द्वारा निष्क्रिय हो जाते हैं क्योंकि ऊतको की तोड़ फोड़ से अमोनिया एसिड समूह और प्यूरिन्स उत्पन्न होते हैं जो सल्फा समूह को निष्क्रिय कर देते हैं। अतः यह समूह पस की अनुपस्थिति में प्रभावी ढंग से कार्य करता है जैसे मूत्र मार्ग का ई-कोलाई संक्रमण, आंतों का संक्रमण, मस्तिष्क का संक्रमण आदि। सल्फा डायजिन और सल्फा डायमिडिन दोनो का ही स्तर अच्छा बनता है अतः ये अच्छा परिणाम

देते हैं। सक्सीनाइल सल्फा थायेजाल और थेलाइल सल्फा थायजाल, सल्फा थांयेजाल और थेलाइल सल्फा थायजाल आंतों की शल्य क्रिया के पहले दिये जाते हैं। मूत्र मार्ग के संक्रमण में इलाज कई सप्ताह दिया जाता है।

इनके साइड एफेक्ट त्वचा का सेन्सिटाइजेशन और एनाफाइलेक्टिक सदमा है। इनके कण मूत्र मार्ग में भी जमा हो जाते हैं अतः अधिक पानी पीना चाहिये। सल्फासोक्सेजाल और सल्फा मेथेक्या, जाल भी मूत्र मार्ग के संक्रमण में दिये जाते हैं। सल्फामिथोक्सोजाल-ट्राइमिथोप्रिम युग्म मूत्र मार्ग के संक्रमण और न्यूयोसिस्टिस कारनी संक्रमण में दिये जाते हैं। यह युग्म साल्मोनिला के संक्रमण में भी दिया जाता है।

नाइट्रोप्यूरेन्टाइन

यह समूह मूत्र मार्ग के ई-कोलाई संक्रमण में प्रभावी होती हैं इसी तरह ये संरचना आंतों के संक्रमण में भी प्रभावी होती है। नाइट्रोप्यूरेन्टाइम या फ्यूराडेन्टीन मूत्र मार्ग के कुछ प्रोटीयस संक्रमण में भी प्रभावी रहती है।

आइसो निकोटिनिक एसिड

वह पदार्थ टी.वी. संक्रमण में उपयोग की जाने वाली केन्द्रीय दवा है। आइसोनेक्स बैक्टीरिया स्टेटिक है। इसका मोलीक्यूल छोटा होता है अतः मेक्रोफेजेज में प्रवेश कर जाता है और बेसलाई को ट्यूबरकिल के मध्स में नष्ट कर देता है। एक वयस्क के लिये इसकी मात्रा 300 मि.ग्रा. प्रतिदिन हैं यह अन्य दवाइयों के साथ दी जाती है।

पेरा अमीनो सलिसाइलिक एसिड

इस दवाई को भी क्षय रोग में उपयोग किया जाता है पर इसका उपयोग अन्यत्र कम हो गया है। इसकी मात्रा 5 ग्राम दिन में तीन बार दी जाती है जो 15 ग्राम प्रतिदिन होती है यह अत्यन्त अधिक है और आमाशय को खराब करने वाली है।

क्षय रोग का इलाज

क्षय रोग पूरे विश्व में फैला है। रिकेम्पिन एवं आइ.एन.एच से रेजिजटेन्ट बेक्टीरिया मल्टीड्रग रेजिजटेन्ट कहलाता है। यह प्राथमिक या अर्जित हो सकती हैं निम्न दवाइयां आजकल क्षय रोग के इलाज के लिये प्रयुक्त होती है।

(1) आइसोनायेझिडः- 300 मि.ग्रा. प्रतिदिन या 15 मि.ग्रा. प्रति किलो ग्राम सप्ताह में तीन दिन

(2) रिफेम्पिनः- 10 मि.ग्रा./कि. ग्रा. औसम 450 मि.ग्रा. प्रतिदिन

(3) पायरेजिन एमाइडः- 15-30 मि.ग्रा./कि.ग्रा.

(4) इथेम्ब्यूटाल 15-25/कि.ग्रा.

(5) स्ट्रेप्टोमाइसिन इन्जेक्शन 15 मि.ग्रा./दिन

औसतन 75 मि.ग्रा. प्रतिदिन

नोट:- आजकल डाट्स का उपयोग किया जाता है जिसका मतलब है डायरेक्ट आब्जर्वेशन ट्रीटमेन्ट यानि सामने निरीक्षित इलाज। इस प्रथा को बहुउद्देशीय स्वास्थय कार्यकर्ता या कोई स्वास्थ कर्मी सामने ही टी.बी. की दवा खिलाते हैं आद्यतन जानकारी के लिये क्षय रोग अधिकारी से मिले।

पेनिसिलिन्स

ये बैक्टीरिया की कोषीय भित्ति के पेप्टाइड को नष्ट करती है। पेनिसिलिन्य की क्रियाशीलता के लिये बीटालेक्टेम रिंग आवश्यक है। जो बैक्टीरिया बीटा लेक्टेमेज उत्पन्न करते हैं उन पर पेनिसिलिन्स का कोई असर नहीं होता। पेनिसिलन समूह में कई पेनिसिलिन्स आते हैं।

(1) पेनिसिलिन जी:- यह एक अच्छा ग्राम पाजिटिव खत्म करने वाली दवा है पर बीटा लेक्टेमेज से प्रभावित हो जाती है

(2) मेथिसिलिन नेफसिलिन वीटालेक्टेम प्रतिरोधक है पर उनकी ग्राम पाजीटिव बैक्टीरिया के प्रति मारक क्षमता कम है।

(3) एम्पीसिलिन, कारवेनिसिलिन और टाइ कारवेनिसिलिन का प्रभाव क्षेत्र बड़ा है और ग्राम पाजिटिव और ग्राम निगेटिव बेक्टीरिया के विरूद्ध काम करती है। लेकिन ये वीटा लेक्टेमेज से निष्क्रिय हो जाते हैं।

(4) पेनिसिलिन व्ही और क्लाक्सेसिलन मंुह से ली जा सकती है इसी तरह एम्पीसिलिन एमाक्सीसिलीन भी मंुह से ली जा सकती है।

(5) मेजियोसिलिन और पाइपरसिलिन स्यूडोमोनासिस सीरेशिया और क्लेवसिला के विरूद्ध भी नारक क्षमता रखती है।

सिफेलो स्पोरिन्स

यह समूह पेनिसिलिन्स से संबंधित है ये वेक्टीरिसाइडल है। इनमें 6 अमीनो सिफेलो स्पोरेनिक एसिड रहता है। जैसे जैसे इनका प्रभाव ग्राम निगेटिव बैक्टीरिया के विरूद्ध बढ़ता जाता है इनकी प्रजातियां विभाजित होती जाती है। इनकी पहली प्रजाती ग्राम पाजीटिव वेक्टीरिया के विरूद्ध अधिक प्रभावी है जबकि एनीराबिक एवं ग्राम निगेटिव बेक्टीरिया के कम प्रभावी है। ये लेकिन अन्य प्रजातियों से सस्ते है। दूसरी प्रजाति के सिफेलोस्पोरिन पहली की अपेक्षा ग्राम निगेटिव एवं एनीराबिक बैक्टीरिया के विरूद्ध अधिक प्रभावशाली होते हैं ये अन्तः त्वचा संक्रमण में अधिक प्रभावी होते हैं।

तीसरी प्रजाति के सिफेलोस्पोरिन्स और अधिक ग्राम निगेटिव बैक्टीरिया के विरूद्ध प्रभावी होते हैं पर अधिक मंहगे होते हैं। ये बीटालेक्टेमेज बैक्टीरिया के विरूद्ध भी अधिक मारक क्षमता रखते हैं। ये एनीराब्स और स्टाफाइलो काकाई के विरूद्ध कम प्रभावी रहते हैं।

एरीथ्रोमाइसिन्स

ये मेकोलाइट लेक्टोन है से बेक्टरियो स्टेटिक है अतः श्वेत रक्त कणिकायें एवं मेक्रोफेज बैक्टीरिया को निगल लेती है। यह एन्टीबायोटिक आमाश्य में एवं आंतों में परेशानी पैदा करती है यह एन्टीबायोटिक स्ट्रेप्टो काकाई स्टाफाइलो काकाई, मायकोप्लाज्मा लीगियोनेयर संक्रमण फोडे फंुसी एवं श्वासतंत्र के संक्रमण में उपयोग की जाती है।

एजीथ्रोमाइसिन इसीका अधिक विकसित एवं प्रभावी प्रतिजैविक पदार्थ है यह तुलनात्मक रूप से सुरक्षित है एवं वयस्को को 500 मि.ग्रा. दिन में एक बार दी जाती है।

टेट्रासाइक्लिन्स

यह समूह बैक्टीरियोस्टेटिक है एवं ब्राड स्प्रेक्टम एन्टीबायोटिक कही जाती है। यह ट्रिपेनोमा माइकोबैक्टीरिया एवं रिकेट्रिसया के विरूद्ध भी प्रभावशाली है अतः सिफेलिस टी.वी. में भी उपयोग की जाती है। यह आंशिक रूप से मलेरिया के विरूद्ध भी काम करती है। इस समूह ने डाक्सी साइक्लिन तक लम्बा सफर तय किया है। मगर बच्चो में यह दांतो को पीला रंग देती है इसलिये उनमें उपयोग नहीं करते।

क्लोरेम्फीकाल

यह भी बेक्टीरिया स्टेटिक दवा है। मतलब यह कि यह दवा भी जीवाणुओं का विभाजन रोकती है। इस दवा से एप्लास्टिक एनीमिया हो जाता है एवं रक्त केंसर भी हो सकता है। यदि शिशुओं में इसका उपयोग करें तो कोलेप्स हो जाता है। इसे मोतीझरा में उपयोग करते हैं जहां अन्य दवायें असफल हो जाती है एवं स्टेफाइलो काकस मेनिन्जाइटिस में उपयोग की जाती है। इसका उपयोग बहुत कम हो गया है।

अमीनोग्लाइको साइड्स

अमीनो ग्लाइको साइड्स बेक्टीरिया माइरक प्रतिजैविक है और दोनो ग्राम धनात्मक एवं ग्राम ऋणात्मक जीवाणुओं के विरूद्ध कार्य करते हैं। ये आर एन.ए. से चिपक जाते हैं और जीवाणु की भित्ति को बनने से रोकते हैं। ये श्रवण

तंत्रिका (आठवीं नर्व स्टेटोएकास्टिक नर्व) को क्षति ग्रस्त करते हैं अतः व्यक्ति की श्रवण शक्ति कम हो सकती है इसी तरह ये गुर्दो को क्षतिग्रस्त करते हैं। ये बीटा लेक्टेम एन्टीबायोटिक्स जैसे सिफेलोस्पोरिन्स या कार्बोनिसिलिन्स के साथ उनकी मारक क्षमता बढ़ा देते हैं। ये अमीनो ग्लायकोसाइड्स स्यूडोमोनास एवं क्लेटिसला बैक्टीरिया के विरूद्ध अधिक मारक क्षमता रखते हैं। इनके उदाहरण जेन्टिसिन, अमीकेसिन एवं नेटिलमाइसिन इत्यादि है।

पोलीमिक्सिन्स

ये पोलीपेप्टाइड स्यूडोमोनास ईरोजीनोसा के विरूद्ध क्रियाशील है। ये अन्तःशिरा इंजेक्शन चक्कर आना एवं गुर्दे को नुकसान पहुंचाते हैं और श्वास अवरूद्ध करते हैं। अतः इनका कम उपयोग होता है।

लिंकोसोमाइड्स

ये एनीराव्स और ग्राम पाजीटिव बैक्टीरिया के विरूद्ध कार्य करते हैं। ये आंतों के बेक्ये क्लास्ट्रिडियम डेफीसाइल के विरूद्ध कार्य नहीं कर पाते जो विष हानिकारक तत्व उत्पन्न करते हैं जिससे नेफ्रोटाइजिंग मेम्बेनरस कोलाइटिस उत्पन्न हो जाते हैं। इससे खूनी दस्त होने लगते हैं।

वेन्कोमाइसिन

वेन्कोमाइसिन बैक्टीरिया मारक प्रति जैविक है यह ग्राम पाजिटिव बैक्टीरिया के विरूद्ध मारक क्षमता रखती है। यह स्ट्रेप्टोकाकाइ, स्टेफाइलोकाकाई एवं क्लास्ट्रीडिया (क्लास्ट्रीडियम बेल्चाई, क्लास्ट्रीडियमटिटेनाइ एवं क्लास्ट्रीडियम वोटलिनम आदि बैक्टीरिया) के विरूद्ध मारक क्षमता रखती है अतः टाक्सिक एन्टेरो कोलाइटिस के विरूद्ध काफी प्रभावशील है एवं एन्टाबायोटिक से उत्पन्न खूनी दस्तो में दी जा सकती है इसके दुष्प्रभाव मस्तिष्क की आठवीं तंत्रिका को सब गुर्दो को क्षमिग्रस्त करना हैं। अतः सीरम क्रीयेटिनीन करवाते रहना चाहिये।

मेट्रोनिडेजाल, टिनिडेजोल इत्यादि (आइडिजोल रिंग)

विशेषकर मेट्रोनिडेजाल अमीबा एवं ग्राम निगेटिव बैक्टीरिया में बहुत प्रभावशाली है साथ ही जियारडिया एवं ट्राइकोमेनिड्स के विरूद्ध काम करती है। इसे सी. डेफिसाइल के विरूद्ध भी उपयोग में लाया जा सकता है। इसे मंुह से या अन्तशिरा इंजेक्शन से दिया जा सकता है। यह एक सस्ती एवं कम नुकसान दायक दवा है चूँकि यह रक्त मस्तिष्क अवरोध को पार कर सकती है अतः कुछ मस्तिष्क के "पस" (पीप) में इसे दिया जा सकता है।

इमीपेनम

यह ग्राम पाजिटिव एंव बीटालेक्टम उत्पन्न करने वाले सभी ज्ञात बैक्टीरियागणों के विरूद्ध सबसे अधिक प्रभावशाली है अतः अकेले ही इसका उपयोग किया जा सकता हैं इसे सिलेस्टा टेटिन के साथ उपयोग लाया जता है जो इसका चयापचय कम करती है एवं गुर्दे की क्षति को बचाती है।

क्विनोलोन्स

इस समूह में साइप्रो फ्लोक्सेसिन ओफ्लोक्सेसिन लारफ्लेक्सेसिन नारफ्लेक्सीसिन इत्यादि दवाइयां आती है। इनमें सबसे अधिक उपयोग साइप्रोफ्लोक्सेसिन का किया जाता है। नारेफ्लोक्सेसिन का उपयोग स्वास्थ गुर्दो के संक्रमण में किया जाता है। साइप्रोफ्ोक्सेसिसन्स ग्राम पाजीटिव एवं ग्राम निगेटिव बेक्टीरिया समूह दोनो के विरूद्ध सक्रिय रहती है एवं एनीराव्य के विरूद्ध भर सक्रिय नहीं रहती है इसे त्वचा संक्रमण एवं उसके नीचे के किसी भी संक्रमण के विरूद्ध काम में लाते हैं। इसका दीर्घ उपयोग गुर्दो को खराब करता है।

एन्टीफन्गल्स

फन्जाई वे यीस्ट या फफूंद है जो प्रतिरोधक क्षमता कम होने पर या डायबिटीज में या साफ सफाई से न रहने पर त्वचा, फेफड़ो शरीर के आंतरिक भागो का अतिक्रमण करते हैं। (डा. के.के. श्रीवास्तव, डा.एम.के.राय द्वारा इनकी उपस्थिति प्रोस्टेट एवं एपेन्डिक्स में भी दर्ज की गई है। मुख्य पदार्थ जो फंगाई के (एक वचन फंगस) के विरूद्ध उपयोग किये जाते हैं निम्नानुसार है-

(1) एम्फाट्रेसिन बी - यह पदार्थ इन्ट्रावीनस दिये जाते हैं ये स्थानीय रूप में उपयोग में लाया जाता है। अन्तःशिरा उपयोग से यह आन्तरिक संक्रमण में भी कार्य करता हैं यह फंगस की भित्ति कोष को नष्ट करता हैं इसके अबांधित प्रभाव बुखार, ठण्ड लगना, उबकाई, उल्टी और सिर दर्द है यह गुर्दो को हानि पहुंचा सकती है।

(2) ग्राइसोफल्विन: यह मंुह में भी दी जा सकती है एवं स्थानीय रूप से लगाई भी जा सकती है। इसका उपयोग बालो एवं त्वचा के संक्रमण में करते हैं यह अच्छी तरह से सहन की जा सकती है।

(3) निस्टेनिन:- यह फंगस की भित्ति कोष को नष्ट करती है यह फंगीस्टेटिक दवा है।

(4) प्लूटी साइटोसिन:- यह फंगस के कोष केन्द्रक को नष्ट करती है। यह आंतों से शोषित हो जाती है इसके अवांछित प्रभाव कम है। इसे एम्फोट्रेसिन बी के साथ उपयोग करते हैं। फ्लूकेनेजाल यह आंतों से अच्छी प्रकार से अवशोषित

होती है इसके अवांछित प्रभाव कम है इसे आइन्टमेन्ट्स में भी उपयोग में लाते हैं।

परजीवी मारक (पेरासाइटोसाइडल) दवायें

मुख्य परजीवी इस प्रकार है

(1) मेगट्स या इल्लीयां:- मक्खियों के लार्वा खुले घावों को संक्रमित करते हैं

(2) राउन्ड वर्म (3) हुक वर्म (4) पिन वर्म

(5) टीनिया सोलियम टीनिया सेजिनेटा

जो औषधियां उपयोग में लाते हैं वे निम्नानुसार है

मलेरिया परजीवियों के विरूद्ध: ये अमीनो क्वीनलीन है। एन्टी अमीबीक भी है

(1) क्लोरोक्वीन

(2) सल्फोडोक्सीन पायरे मिथामीन

(3) मेफ्लोक्वीन

(4) आरटीस्यूनेट

(5) आरटीथर

(6) इमडेजाल्स अमीबा के विरूद्ध

(7) थायोबेन्डेजाल, मेन्डेजाल, अल्बेन्डाजाल, ट्राइचुरिस राउन्डवर्म, थ्रेड वर्म, हुकवर्म, पिनवर्म स्ट्रान्गोलाईडियेसिस के विरूद्ध:

(8) डाइइथाइल कारवेमेजीन:- फायलेरियेसिस माइक्रोफाइलेरियेसिस

(9) प्रान्जीक्वेन्टेल:- सिस्टोसोमियेसिस

टीप:- वायरोलोजी बैक्टीरियोलाजी परजीवी पेरासाइटोलाजी एवं फन्जाई के विज्ञान स्वतंत्र एवं विस्तृत विज्ञान है। जिज्ञासु विद्यार्थियों को संबंधित पुस्तकें पढ़ने की सलाह दी जाती है।

प्रति विषाणु दवाइयां

वायरस जीवित और अजीवित के बीच की कड़ी होती है ये प्रतिकूल परस्थितियों में अजीवित अवस्था में पड़े रहते हैं। अनुकूल परस्थितियों में सक्रिय हो जाते

हैं। चँूकि ये कोशिकाओं के अन्दर रहते हैं अतः शरीर की प्रतिरोधक क्षमता की पहुंच से छिपे रहते हैं। मुख्य प्रतिविषाणु दवाइयों को एड्स के इलाज से समझ सकते हैं।

एड्स क्या है ?

हालांकि एड्स के बारे में विस्तृत रूप से लेखकों की "पुस्तक प्रतिरोधक क्षमता" में समझाया गया है पर संक्षिप्त में इसे निम्न परिभाषा में समझा जा सकता है। एड्स हयूमन इम्युनों डेफिशियेन्सी वायरस से उत्पन्न लक्षण समूह है जो असंयमित यौन सम्बन्ध इंजेक्शन द्वारा ली जाने वाली, नशे की दवाइयों मां से बच्चे के या संक्रमित रक्त प्राप्त करने से होती है एवं इससे सी.डी. 4 टी लिम्फोसाइट कोष कम होते जाते हैं। जिससे कोशीय प्रतिरोधक क्षमता कम होती है।

(1) न्यूक्लिासाइड एनालाग

(1) भाइडोविहीन:- 200 मिग्रा. दिन में तीन बार

(2) डायलेनोसाइन:- 200 मिग्रा. दिन में दो बार अवांछित प्रभाव वेदना युक्त न्यूरोपेथी एवं पेन्क्रीयेटाइटिस

(3) झल्सीर्टोवीन:- 0.75 मिग्रा दिन में तीन बार

(4) स्टारब्यूडीन:- 30 मिग्रा से 40 मिग्रा दिन में दो बार। पेरीफल न्यूरोपेथी आवांछित प्रभाव

(5) लेमीब्यूडीन:- 150 मिग्रा. दिन में दो आर

नान न्युक्लिओसाइड रिवर्स ट्रान्स क्रिप्टेज इनहिविटर:- रिवर्स ट्रान्स क्रिप्टेज एन्जाइम होता है जो डी.एन.ए. को आर.एन.ए. में बदलता है। इसी एन्जाइम की सहायता से एचआईवी वायरस कोष के डी.एन.ए. को आर.एन.ए. ए स्ट्रेन्ड (वायरस) में बदलता है। रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज इनहिविटर इस एन्जाइम को दबाता है। इस वर्ग की दो दवाइयां है।

(6) नेवीरेजीन:- 400 मिग्रा. दिन में तीन बार

(7) डेलाविरडीन:- 200 मिग्रा./दिन। फिर 200 मिग्रा. प्रतिदिन

(3) प्रोटीएज इनहिबिटर

(8) सेक्वि ने वीर:- 600 मिग्रा. 8-8 घंटे में

(9) रिटो में वीर:- 300 मिग्रा. दिन में दो बार। अवांछित प्रभाव उबकाई पेट में दर्द, दस्त और होंठो के चारों तरफ झिनझिनी

(10) इन्डीनेवीर:- 800 मिग्रा. 8-8 घंटे से/अवांछित: प्रभाव गुर्दे में पथरी और लक्षण विहीन इन्डायरेक्ट वाइलीरूबिन का बढ़ना

(11) नेलफीनेवीर:- 750 मि.ग्रा. दिन में दो बार/अवांछित प्रभाव: दस्त
कुछ अन्य प्रतिविषाणु दवाइयां है जो अन्य बीमारियों में दी जाती है उनका वर्णन निम्नानुसार है
हरपीज झोस्टर एक बीमारी है जो वेरीसिला झोस्टर वायरस से होती है। इसके दो रूप है
(1) चिकिन पाक्स (2) हरपीज जोस्टर
इनका इलाज
(12) ए.साइक्लोवीर:- यह अन्तःशिरा और मंुह से दी जा सकती है और इसकी आइन्टमेन्ट लगाई जा सकती है। 200 मिग्रा 4 बार (13) फेम साइक्लोवीर (14) वेला साइक्लोवीर

ह्यूमन पेपीलोमा वायरस
इस बीमारी में लिंग, योनि एवं गुदा द्वार में वार्टस हो जाते हैं।
इलाज:-
(15) इन्टरफेन (इमिडोक्विन) स्थानीय स्तर पर भी लगाई जा सकती है।

दर्द निवारण

(कृपया मेडिसिन की पुस्तकालय का अध्ययन करें)
दर्द महसूस करने के रिसेप्टर (नोसीसेप्टर) त्वचा में हर तरफ फैले हुये है। त्वचा की उत्तेजना में मास्ट कोषो से हिस्टेमीन, एस.आर.एस.ए. इत्यादि उत्पन्न होते हैं। स्थानीय स्तर पर सोडियम पोटेशियम इलेक्ट्रिक पोटेन्शियल उत्पन्न करते हैं। ये इलेक्ट्रिक स्टिमुलाइ विकेन्दिं्रत तंत्रिका सिरों को उत्तेजित करते हैं। ये तंत्रिका रेशे दर्द, तापक्रम, और आदिम स्पर्श सुशुम्मा में क्रास करते हैं और सूक्ष्म स्पर्श, कम्पन्न जोड़ो के स्पर्श एवं गहरी मांस पेशीय संवदनाओं के मेड्यूला में क्रास करके दूसरी तरफ जाते हैं। (कृपया चित्र देखे) ये सब फिर थेलेमस में रिले करते हैं। वहां सेरग्रम के संवेदीय भाग में पहुंचते हैं जहां उनका विश्लेषण होता है उनके सामानान्तर गतिकीय तंत्रिका रेशे सशुम्मा में इन्हें नियंत्रित करते हैं। जहां ये संवेदना पर नियंत्रण करते हैं।
वे पदार्थ जो दर्द कम करते हैं निम्न श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं
(1) एन्टी इनफ्लेमेटरी
(2) तंत्रिकाओं में दर्द की गति पर प्रभाव डालने वाले
(3) अवसाद कम करने वाले पदार्थ

(4) रक्त वाहिकाओं को फैलाने वाली

(5) इन वालन्ट्री मांस पेशियों को रिलेक्स करने वाले

(6) एन्टी एपीलेप्टिक्स

(7) मस्तिष्क पर कार्य करने वाले पदार्थ व्यक्ति मौत से नहीं डरता दर्द से डरता है। चिकित्सक के पास व्यक्ति दर्द के कारण आता है। अतः दर्द का कारण जान कर उनका इलाज करना आवश्यक है।

(8) स्थानीय असंवेदक दवायें

(9) एन्जाइम्स

(10) आमाशय व आंतों पर कार्य करने वाली दवाइयां

एन्टी इन्फ्लेमेटरी दवाइयां

ये वे दवाइयां होती है जो घाव की सूजन कम करती है। अतः तंत्रिकाओं पर पड़ने वाली दबाव कम हो जाता है ये दवाइयां निम्नानुसार है

(1) एस्पिरिन मात्रा 300 मि.ग्रा. में तीन बार इस दवा के अन्य कई उपयोग है जैसे यह रक्त का थक्का जमने से रोकती है अतः मस्तिष्क या हृदय में थक्का जमना रोकती है। इस प्रयोग में इसकी मात्रा 75 मिग्रा. प्रतिदिन है।

यह दवा आमाशय में व्रण पैदा करती है अतः इसका उपयोग सावधानी से किया जाता है जिनमें रक्त स्त्राव की बीमारी है उनमें भी इसका उपयोग सावधानी से किया जाता है।

(2) डाइक्लोफेनेक:- यह एक पोटेन्ट एन्टी इन्फ्लेमेटरी (सूजन कम करना) है मात्रा 100 मिग्रा दिन में तीन बार मगर यह भी आमाशय में ब्रण उत्पन्न करती है। ये ब्रण फट भी सकते हैं।

(3) एसीक्लोफिनेक:- यह अपेक्षाकृत सुरक्षित रहती है।

(4) पिराक्सीकेम

(5) लेनोक्सीकेम

(6) कारटीसान:- ये शक्तिशाली हारमोन है। एलर्जी भी मिटाते हैं ये रक्त शर्करा एवं रक्त चाप बढ़ाते हैं। निर्भरता हो जाती है। बहुत कम उपयोग किया जाना चाहिये। संक्रमण बढ़ा सकते हैं घाव का आकार बढ़ा सकते हैं। (इनके अलावा तमाम दर्दनिवारक)

(7) रोफी कोक्सि येलेक्सीकेम

(8) सेलीकाक्सिकेम

(10) पेरा सीटे माल (नीचे देखे)

(11) आइवू प्रोफेन 400 मिग्रा/3 बार

(12) नेप्रोक्सिन
(13) इन्डोमिथेसिन फिलियोथेरेपी
(14) फिजियोथेरेपी
तंत्रिकाओं की गति पर प्रभाव
(1) अफीम (2) आक्सोकोडीन (3) फेन्टानील (4) व्यूपर नारफीन (5) डेक्सडो मोरेमाइड (6) हाइड्रोमोरफान (7) मीधेडज़ेन (8) एवं फीनोजोसीन। इनसे आदत पड़ जाती है कब्जियत होती है अतः कम से कम उपयोग करना चाहिये। कम प्रभाव वाली (9) कोडीन (10) डाइहाइड्रोकोडीन (11) डेक्सट्रो पोवाक्सी फेन है। तुलनात्मक रूप से सुरक्षित है
पेरासिटामाल:- (मेटाक्लोप्रोमाइड) यह बुखार भी उतारती है और दर्द भी दूर करती है मात्रा 500 मिग्रा दिन में तीन बार। सुरक्षित है
(12) परोक्सेटीन (13) साइटोलोप्राम (14) एसीटोलेप्राम एवं सरटेन ये सीरोटोनिन का पुनः उपयोग बंद कर पोली न्यूरान को ब्लाक कर देते हैं।
एन्टीडिप्रेसेन्ट:- (लेखक ने इन्हें दीर्घकालीन में उपयोग पाया -श्रीवास्तव के.के. एन्टीसेप्टिक)
ट्राइसाईक्लिक एन्टीडिप्रेसेन्ट ये एडिनलिन डीअपटेक कम करते हैं उदहारण-
(1) अमीट्रिप्टेलीन (2) क्लोमीप्रेलीन (3) डोक्सीपेन (4) इमीप्रेमीन (5) नारट्रिप्टीलीन (6) ट्राइमीथोमिम
(7) डोथीपिन
(अ) ट्रेजोडोन: सीरीटोनिन अपटेक कम करता है
(ब) ट्रेटासाइक्लिक एन्टीड्रिपेसेन्ट (9) मीनासरटिन (10) मेप्रोटिलीन
(द) सिलेक्टिव सीरोटोनिन री अपटेक इनहिबिटर (10) फ्लूआक्सीटिन फ्लूबोक्सेमीन
(12) पेरोक्सेटीन (13) साइटोलोप्राम (14) एसीटोलेप्राम एवं सरटेन ये सीरोटोलिन सी का पुनः उपयोग बंद कर पोली न्यूरान को ब्लाक कर देता है।
रक्त वाहिकाओं को फैलाने वाले पदार्थ
(हृदयघात, एन्जाइना, थ्रोम्बो एन्जाइटिस ओव्लीटरान्स
बीटा ब्लाकरस:- ये हृदय की आक्सीजन आवश्यकता को कम करके आक्सीजन को बढ़ाते हैं
(1) एमाइल नाइट्रेट (2) ग्लेसराइल ट्राइनाइट्रेट (3) पेन्टा एरीथेटाइल टेट्रानाइट्रेट (4) आइसोसारवाइड डाइनाइट्रेट (5) आइसोसाइबाइड मोनोनाइट्रेट (6) ट्रोल नाइट्रेट। इन्हें जवान के नीचे रख कर चूसा जा सकता है।

केल्सियम चेनल ब्लाकरस:- कोरोशरी एवं शरीर की
तमाम रक्त वाहिकाओं को चैड़ा करते हैं उदहारण: (7) डिल्टियाजम समूह (8) बेराप्रेमिल (9) नाइएफीेडपीन समूह
(स) पोटेशियम चेनल एक्टीवेटर उदहारण (10) नीकोरेन्डिल: ये शरीर की तमाम रक्तवाहिकाओं को चैड़ा करती है।
(10) साइटोप्रोटेक्टिवस:- ये कोषीय स्तर पर काम करती है हृदय का रक्त कम होने पर चयापचय द्वारा उत्पन्न हानि को कम करती है उदहारण (11) ट्राइमेटा
(द) अन्य पदार्थ कोरोनरी धमनियों को चैड़ा करते हैं जैसे (12) डाइपिरीडेमाल (13) पर हेल्कीलीन और प्रिनाइल अमीन (कृपया मेडिसिन की पुस्तक देखें)
मांस पेशियों को फैलाने वाले पदार्थ
1 केरीसोप्रोडाल:- यह पदार्थ सुशुम्ना के स्तर पर पोलीसिनेप्टिक न्यूरान पर कार्य करता है इसे अक्सर दर्द निवारक औषधियों के साथ देते हैं।
(2) फ्लोर मीजेजोन
(3) ओरफीनोडीन:- एन्टीकोलीनरजिक है
(4) डायेजपाम (5) एल्प्रा जोलाम (6) कीटेजोलम 4, 5, 6, बेन्जोडायलेफीन्स है और केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर काम करते हैं। एन्टीएपीलेप्टिक (ट्राईजेमिलन न्यूरेल्गिया)
(1) कार्बमोजापीन - 200 मिग्रा/दिन में 1500 मिग्रा/प्रतिदिन इसके एटेक्सिया (असंन्तुलन) हो सकता है।
(2) सोडियम वेल्प्रोयेट (3) गावापिन 100 मिग्रा से 230 मिग्रा/कारबामेजाबिन के साथ देते हैं।
(3) गारडीनाल -मुख्य रूप से नींद लाने वाली दवा
स्थानीय अंसवेदक
(1) लिग्नोकेन:- 2 प्रतिशत घोल पर इन्हें कण में उपयोग नहीं किया जा सकता है।
(2) सेन्सोरकने:- सुशुम्ना निश्चेतक है।
एन्जाइम्स
(1) सिरेशियोपेप्टीडेज:- 5 मिग्रा से 15 मिग्रा प्रतिदिन
(2) ट्रिप्सिन काइमोट्रिप्सिन
एन्जाइम्स घाव की सूजन कम करते हैं, एवं एन्टीबायोटिक घाव तक पहुंचाते हैं।
आमाशय एवं आंतों पर प्रभाव डालने वाली दवाइयां
पेप्टिक अल्सर आमाशस के व्रण को कहते हैं इसके मुख्य दो मुख्य कारण है
(1) आमाशय में अम्ल अधिक उत्पन्न होना

(2) आमाशय की रक्षामक सतह, म्यूकस का कम उत्पन्न होना

अम्ल अधिक होने पर रिगर्जिटेशन ईसोफेजाइटिस भी हो जाती है। वहीं म्यूकिस कम होने पर केंसर की संभवना होती है दोनो के संयुक्त प्रभाव से अल्सर फट भी सकता है जिसमें जान बचाने के लिये तत्काल आप्रेशन की जरूरत पड़ती है।

आमाशय पर प्रभाव डालने वाली दवाइयों को हम निम्न श्रेणियों में बांट सकते हैं

(अ) अम्ल के उदासीनीकरण करने वाली दवाइयां

(ब) अम्ल कम उत्पन्न करने वाली दवाइयां

(स) आमाशय की गति कम करने वाली दवाइयां

(द) आमाशय का अम्ल शीघ्र खाली करने वाली दवाइयां

अम्ल का उदासीनीकरण

(1) सोडियम बाइकार्बोनेट:- ये आमाशय में कार्बन डायआक्साइड उत्पन्न करके अम्ल का उदासीनीकरण करते हैं।

(2) मैग्नीशियम ट्राइसिलीकेट:- धीमा प्रभाव

(3) केल्सीशियम साल्ट: ये शोषित होकर केल्शियम का स्तर बढ़ा देते हैं।

(4) एल्यूमिनियम ट्राइड्राक्साइड या ट्राइसिलीकेट। कभी कब्जियत या दस्त पैदा कर सकते हैं। अम्ल उदासीनीकरण करने वाली दवाइयां खाने के बाद लेना चाहिये।

(5) क्रियाशील डायमेथाकान:- वायु के बुलबुले बड़े करके बाहर निकालते हैं उन्हें अम्ल उदासीनीकरण दवाइयों के साथ मिलाया जाता है।

(ब) अम्ल कम उत्पन्न करने वाली दवाइयां

हिस्टेमिन एच 2 रिसेप्टर एन्टागोनिस्ट

(1) साइमेटिडीन

(2) फेमोटीडीन और

(3) रेनीटीडीन में रेनीटीडिन अधिक सुरक्षित मात्रा है मात्रा 150 मिग्रा दिन में दो बार। एक दम बन्द न करें।

कोषो की रक्षा करने वाली दवाइयां

(1) कारणीनोक्सोलोन: यह दवा मुलहठी से बनती है।

(2) डी ग्लिसिरिनाइज्ड लिक्वोराइस

इन दोनो दवाइयों का असर कारटीसोन की तरह भी होता है (कृपया ऊपर देखे)

(3) मीेसोप्रोस्टोल - यह म्यूकस बढ़ाती है और बायकाखोनेट उत्पन्न करती है। यह एन.एस. एस आई.डी (नान स्टीराइड एन्टी इन्फ्लेमेंटरी ड्रग) से आमाशस के कोषो की सुरक्षा के लिये देते हैं।

(4) सुक्रेल्फेट - एल्म्यूनियम हाइड्राक्साइड और सल्फेटेड सुक्रोज का यौगिक है ये अल्सर पर ऊपरी रक्षात्मक सतह बनाते हैं।

(5) ट्राइपोटेशियम साइट्रेटोविस्मुथेट या अल्सर को भरने के गुण रखता है एवं प्रोस्टाग्रेन्डिन के उत्पन्न करने के गुण रखता है इसे गर्भ के समय एवं गुर्दे के कार्य न करने की स्थिति में नहीं देते।

(6) एल्जिनीक एसिड: यह आमाशय के स्त्राव के ऊपर तैरता रहता है एवं प्रोस्टाग्लान्डिन को उत्पन्न करता है।

(7) प्रोटोन पम्प उदासीनीकारक (प्रोटोन पम्प इन्हिविटर) जैसे (7) ओमीप्रेझोल (8) लेन्सेप्रोझोल (9) पेन्टोप्रेझोल (10) ईसोमीप्रेझोल एवं (11) रेबीप्रेझोल ये मूल एवं अंतिम एसिड उत्पत्ति को रोकते हैं। यह तुलनात्मक रूप से अल्सर ठीक करने के लिये नया समूह है एवं एन्टी इन्फ्लेमेटरी दवाइयों के नुकसान को रोकते हैं।

टीप:- सिसाप्राइड का उपयोग कई देशो में बंद कर दिया गया है क्योंकि यह हृदय की लय को रोक सकता है।

(12) मेवाभेरीन आमाशस की मांस पेशियों को रिलेक्स करता है।

हेलीकोबेक्टर पाइलोरी

यह जीवाणु कई पेप्टिक अल्सर के प्रकरणों में पाया गया है। यह ड्यूओडीनम के व्रण के 90 एवं आमाशय के 70 प्रतिशत वणो में पाया गया है इसका इलाज एक प्रतिजैविक यौगिक मेट्रोनिडेझ एवं ओमीप्रेझोल से किया जाता है।

आमाशय की गति कम करना

इस वर्ग में कई दवाइयंा आती है धतूरा के निकलने वाली दवाइयां जैसे (13) एट्रोपीन। अन्य जैसे (14) डाइसाइक्लोमीन (15) प्रोपेन्थेलीन इत्यादि।

इन दवाइयों का उपयोग इर्रीटेबल वावल सिन्ड्रोम (उत्तेजित आंतों का लक्षण समूह आंतों के अवरोध से नहीं किया जाता। इसी समूह में अन्य दवाइयां जैसे (16) एम्व्यूटोनियम (17) थेलेडोना अल्केलाइड (18) ग्लाइको पायरोलियम (19) हायोसायमीन (20) हायोसीन (21) आइसोप्रोपनेनेमाइड (22) एवं क्लीडिनियम आदि आती है (23) पिपेडीडोलेट (24) पादपेन्जोलेट आदि भी समूह में रखी जाती हैं।

ये दवाइयो वृद्धो को सावधानी पूर्वक दी जानी चाहिये विशेषकर उन्हें जिन्हें ग्लाइकोमा (कांचबिन्दु), प्रोस्टेट की वृद्धि इत्यादि हो।